वर्ष ४३] * * * * [अङ्क १२

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष २०२६, दिसम्बर १९६९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–गो-प्रेमी गोपाल [कविता] ...	१२९७
२–कल्याण ('शिव') ...	१२९८
३–प्रार्थना–एकचिन्तन [संत श्रीविनोबा] (प्रेषक—श्रीविनयकृष्ण रामदास) ...	१२९९
४–ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश [पुराने अप्रकाशित पत्र] ...	१३००
५–सत्सङ्ग-वाटिकाके बिखरे सुमन ...	१३०२
६–जैसा अभिनय, वैसा फल [मनोवैज्ञानिक कहानी] (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	१३०७
७–सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है [संकलित]	१३११
८–श्रीश्रीविष्णु-तत्त्व (२) (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ...	१३१२
९–सब तुम्हीं हो [कविता] ...	१३१५
१०–प्रकृतिमण्डलमें रहनेपर भी श्रीवृन्दावनकी अप्राकृतता	१३१६
११–विज्ञानकी कसौटीपर मन्त्र (श्रीगोविन्दजी शास्त्री)	१३१७
१२–मानव-धर्म (पं० श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट) ...	१३२०
१३–क्या हिंदू होना पाप है ? (शास्त्रार्थ-महारथी पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)	१३२३
१४–निर्भरतासे प्रभु-प्राप्ति [कविता] ...	१३३३
१५–धर्मका वास्तविक स्वरूप (मेहता श्रीरणजीतमलजी) ...	१३३४
१६–प्रभु मुझे निर्विकार कर ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१३३६
१७–परमात्मासे सौदेबाजी कैसी ? (श्रीधर्मवीरजी)	१३३८
१८–सेवा [सत्य घटनाके आधारपर] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ...	१३४०
१९–परमार्थकी पगडंडियाँ ...	१३४२
२०–कामके पत्र	१३४६
२१–पढ़ो, समझो और करो ...	१३४९
२२–विशेषाङ्कमें 'अग्निपुराण'के साथ-साथ 'गर्गसंहिता' के प्रकाशनकी योजना ...	१३५६

चित्र-सूची

१–सूरके श्याम	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२–गो-प्रेमी गोपाल	(तिरंगा) ...	१२९७

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ... विदेशमें ८० पै० (१...

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

गो-प्रेमी गोपाल

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

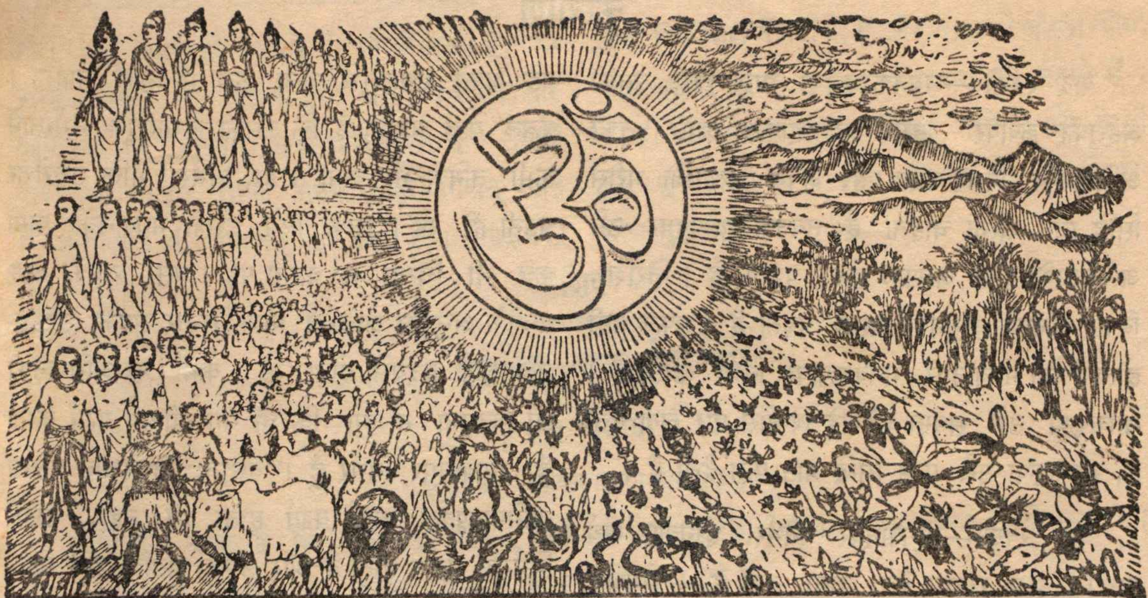

कल्याण

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर पौष २०२६, दिसम्बर १९६९ { संख्या १२
पूर्ण संख्या ५१७

गो-प्रेमी गोपाल

कर मुरली कटि काछनी कलित कमल-मुख-नैन।
कृष्ण कलेवर नील मनि सरस सकल सुख-ऐन ॥
बिहरत बृंदा बिपिन बर करषत मन बरजोर।
नित नूतन लीला ललित करत भुवन-मन-चोर ॥
बरसावत रस-अमिय मधु जन-जन करत निहाल।
ठाढ़े गो-तन तनु दिएँ गो-प्रेमी गोपाल ॥

याद रक्खो—जबतक मनुष्य भगवान्‌पर, उनकी अहैतुकी कृपापर निर्भर न होकर अपने तुच्छ अभिमानपर निर्भर करता है, अपने पुरुषार्थके भरोसे सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, तबतक पद-पदपर उसे अभिमानके द्वारा असफल होना पड़ता है। निराशा, विषाद-शोकका अनुभव करना पड़ता है। सफल वही होता है जो भगवान्‌पर, भगवत्कृपापर निर्भर करता है। भगवत्कृपा उसे समस्त बड़े-बड़े विघ्नोंसे पार लगा देती है, भगवत्कृपा उसे परम सिद्धि प्राप्त करा देती है।

याद रक्खो—भगवान्‌पर निर्भर होनेका अर्थ हाथपर हाथ रखकर बैठ जाना नहीं है—'भगवान् अपने-आप ही सब कर देंगे, मुझे कुछ नहीं करना है'—यों कहकर तामसिक आलस्य-प्रमादके वश होकर—उद्यमरहित होकर पड़े रहना नहीं है।

याद रक्खो—भगवान्‌पर निर्भर करनेवाला पुरुष अहंकारशून्य होता है, सिद्धि-असिद्धिकी चिन्ता नहीं करता, फलानुसंधानपरायण नहीं होता। वह निर्विकार रहता हुआ ही धृति तथा उत्साहके साथ भगवत्सेवाके भावसे निरन्तर भगवान्‌के अनुकूल कार्य करता रहता है। अपने कर्तव्य-पालनमें तनिक भी त्रुटि नहीं करता, पूरा तन-मन लगाकर भगवत्-प्रीत्यर्थ सत्कर्मपरायण रहता है। अपनेको भगवान्‌का यन्त्र समझता है और इससे उसमें सात्त्विकताकी वृद्धि होनेके कारण कर्म करनेकी शक्ति भी बढ़ जाती है; क्योंकि उसे फलकी प्रतिकूलता-अनुकूलताका कोई ध्यान नहीं रहता; इससे न तो उसमें निराशा आती है और न भोग-प्राप्तिजनित मिथ्या हर्षोन्मत्तता।

याद रक्खो—निर्भरशील साधक तमोगुणसे अभिभूत न होनेके कारण कभी अकर्मण्य नहीं होता। वह अपने भगवान्‌से अन्य कुछ भी नहीं चाहता। केवल यही चाहता है कि उसकी विश्वासपूर्ण निर्भरतामें कभी तनिक भी कमी न हो, निर्भरा भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहे। उसके लिये उसके भगवान्‌को कभी कुछ भी चिन्ता न करनी पड़े। बस, यन्त्रकी तरह यन्त्रीके अनुकूल आचरण नित्य-निरन्तर सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण हृदयसे होता रहे। कभी इस अभिमानकी भी कल्पना न जगे कि 'मैं भगवत्प्रीत्यर्थ कार्य करता हूँ, भगवान्‌पर निर्भर हूँ।' वस्तुतः निर्भरशील पुरुषसे अभिमानपूर्वक कोई कार्य होता ही नहीं, उसकी निर्भरता सहज होती है और उसका प्रत्येक कार्य सहज स्वाभाविक होता है—कठपुतलीकी भाँति।

याद रक्खो—निर्भरशील पुरुषको कभी असंतोष नहीं होता; असंतोष होता है अभावकी अनुभूतिमें, अभावपूर्तिकी कामनामें। निर्भरशील पुरुष किसी अभावका अनुभव करता ही नहीं; अतः उसे अभावपूर्तिकी कामना भी नहीं होती। उसे नित्य भावस्वरूप भगवान्‌की स्मृति बनी रहती है और उसके द्वारा भगवत्सेवाके कार्य होते रहते हैं।

याद रक्खो—मनुष्य जब भगवान्‌का हो जाता है, उनके हाथोंमें विश्वासपूर्वक बिना शर्तके अपनेको सौंप देता है, तब अपने आप ही उसमें निर्भरता आ जाती है। न उसे अपने पुरुषार्थका ज्ञान होता है, न तन-मनके आरामका। उसकी कोई भी शर्त नहीं होती। वह निश्चिन्त होकर भगवत्कैंकर्यमें प्रवृत्त हो जाता है। उसका प्रत्येक कार्य ही भगवत्सेवाके लिये होता है, भगवत्सेवा-स्वरूप ही होता है। उसके मनमें न तो अपने लिये कुछ पानेकी आवश्यकता रहती है, न कभी कुछ पानेकी कामना ही होती है।

याद रक्खो—यों तो अनन्त-अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डका

सारा कार्य भागवती शक्तिसे ही सम्पन्न होता है, पर निर्भर भक्तके तो छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सारे कार्योंका भार भगवान् स्वयं वहन करते हैं। उसको कब क्या चाहिये, इसकी जानकारी भी भगवान् रखते हैं और पूर्ति भी भगवान् ही करते हैं। योगक्षेमकी सारी जिम्मेवारी वे ले लेते हैं और वास्तवमें असली 'योग' और असली 'क्षेम' का स्वरूप भगवान् ही जानते हैं। वे ही योग-क्षेमका स्वरूप निश्चय करते हैं और वे ही उसे पूर्ण करते हैं। कैसा सौभाग्य है उस निर्भर-शील पुरुषका!

'शिव'

प्रार्थना—एक चिन्तन

[संत विनोबा]

(प्रेषक—श्रीविनयकृष्ण रामदास)

उपनिषदोंमें आया है कि जैसे पक्षी दिनमें चारों तरफ इधर-उधर फिरता है, लेकिन शामको अपने घोंसलेमें आकर स्थिर हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा जब संसारके सब तरहके कामोंमें भटककर थक जाता है, तब विश्रामके लिये वह परमेश्वरके पास पहुँच जाता है। प्रार्थनाका अर्थ है—'जीवकी ईश्वरके पास पहुँचनेकी इच्छा।' हम भगवान्‌की शरणमें आये हैं, यह भाव प्रार्थनामें होना चाहिये।

पक्षी बड़े सबेरे उठकर जो बोलते हैं, वह ईश्वर-स्मरण ही है। शब्द तो वे ही होते हैं, जो वे पीछे भी बोलते हैं, लेकिन प्रभातके ज्यादा गम्भीर होते हैं। प्रार्थना यानी 'जीवका ईश्वरको कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करनेका एक प्रयत्न।'

'ॐ असतो मा सद्गमय।'

—'हे प्रभो! मुझे असत्यमेंसे सत्यमें ले जा।'—ईश्वरसे यह प्रार्थना करनेका तात्पर्य है, 'मैं असत्यमेंसे सत्यकी ओर जानेका बराबर प्रयत्न करूँगा', इस तरहकी एक प्रतिज्ञा-सी करना। प्रयत्नवादकी प्रतिज्ञाके बिना प्रार्थनाका कोई अर्थ ही नहीं होता। यदि मैं प्रयत्न नहीं करता और चुप बैठ जाता हूँ, अथवा विरुद्ध दिशामें जाता हूँ और मुखसे 'मुझे असत्यमेंसे सत्यमें ले जा।', यह प्रार्थना किया करता हूँ, तो इससे क्या मिलनेका?

प्रयत्न करना है, तो फिर प्रार्थना क्यों? प्रयत्न करना है, इसीलिये तो प्रार्थना चाहिये। मैं प्रयत्न करनेवाला हूँ, पर फल मेरी मुट्ठीमें थोड़े ही है। फल तो ईश्वरकी इच्छापर अवलम्बित है। मैं प्रयत्न करके भी कितना करूँगा? मेरी शक्ति कितनी अल्प? ईश्वरकी सहायताके बिना मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। मैं सत्यकी ओर अपने कदम बढ़ाता रहूँ, तो भी ईश्वरकी कृपाके बिना मैं मंजिलपर नहीं पहुँच सकता। मैं रास्ता काटनेका प्रयत्न तो करता हूँ, पर अन्ततक रास्ता काटूँगा या बीचमें मेरे पैर ही कट जानेवाले हैं, यह कौन कह सकता है? इसलिये अपने ही बलबूतेपर मंजिलतक पहुँच जाऊँगा, यह घमंड व्यर्थ है। कामका अधिकार मेरा है, पर फल ईश्वरके हाथमें है। इसलिये प्रयत्नके साथ-साथ ईश्वरकी प्रार्थना आवश्यक है।

प्रार्थनामें दैववाद और प्रयत्नवादका समन्वय है। दैववादमें जो नम्रता है, वह भी आवश्यक है। प्रयत्नवादमें जो पराक्रम है, वह भी आवश्यक है। प्रार्थना इनका मेल साधती है। प्रार्थना अर्थात् 'अहंकाररहित प्रयत्न।'

मुझे 'असत्यमेंसे सत्यमें ले जा।' इस प्रार्थनाका सम्पूर्ण

अर्थ होगा कि 'मैं असत्यमें सत्यकी ओर जानेका अहंकार छोड़कर उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्न करूँगा।'

हम दिनभर जो काम करते हैं, वे सब शामकी प्रार्थनामें परमेश्वरको अर्पण करते हैं—ऐसी भावना रही, तो उसका असर हमारे दिनभरके कामोंपर पड़ेगा और तभी प्रार्थनाकी असली शक्ति प्रकट होगी। 'भगवान्‌को समर्पण करना है'—इस ख्यालसे हमारी सारी क्रियाएँ अपने-आप अच्छी होने लगेंगी। एक अतिथि घरपर आता है, तो हम कितनी स्वच्छतासे, दक्षतासे उसके अनुकूल स्वादिष्ट भोजन बनाकर उसे अर्पण करते हैं। तो जहाँ स्वयं भगवान्‌को समर्पण करनेका ख्याल रहेगा, वहाँ कितनी पवित्रता हमारी क्रियामें आयेगी ?

कर्ममार्गमें कर्मका प्रतिफल रहता है। जैसा करो, वैसा पाओ। जैसा बोया, वैसा पाया; यह कर्मका नियम है। कर्मके नियमसे मनुष्यको भय नहीं मानना चाहिये। परंतु मनुष्य दुर्बल है। बुरे काम कर लेता है, पर फल सहनेकी हिम्मत उसमें नहीं होती। इसलिये क्षमाकी अपेक्षा होती है।

भक्ति-मार्गमें मनुष्यको परमेश्वरसे क्षमाकी आशा रहती है। भक्ति-मार्ग कहता है कि कर्मका नियम टलेगा नहीं। जिसको भगवान् बचायेगा, उसको भी कर्मका फल तो मिलेगा ही। परंतु भगवान् उसे बचायेगा, इसका मतलब यही है कि भगवान् उसे फल भोगनेकी हिम्मत भी देगा। हमने बुरा काम किया, तो उसका फल टलेगा नहीं। परंतु उसका परिणाम चित्तपर न हो, इतनी हिम्मत हममें आये, तो हम बच गये। वह हिम्मत प्रार्थनासे आती है। प्रार्थना भक्तिका विषय है। भक्तिके बिना प्रार्थनाका कोई स्थान ही नहीं।

ब्रह्मलीन परम पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

[पुराने अप्रकाशित पत्र]

(१)

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। महाभारताङ्क पढ़कर आपको प्रसन्नता हुई सो अच्छी बात है।

आपकी शङ्काओंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) भूरिश्रवा नामका राजा एक ही हो, ऐसी बात नहीं है। शङ्ख नामके योधाने जिस भूरिश्रवाका दाहिना हाथ काटा था, वह तो राजा सोमदत्तका पुत्र था, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। पर सात्यकिसे युद्ध करते समय जिस भूरिश्रवाका हाथ अर्जुनने काटा था, वह किसका पुत्र था, यह वहाँ नहीं बताया गया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनों व्यक्ति भिन्न-भिन्न थे। महाभारताङ्कमें जो बात लिखी गयी है वह मूल महाभारतसे ही ली गयी है; कोई भी बात स्वतन्त्र नहीं लिखी गयी है तथा दूसरी जगहकी बात भी नहीं लिखी गयी है। जो कुछ बातें महाभारतमें विशेष उपयोगी नहीं मालूम दीं, उनको छोड़ा गया है। इसीलिये उसका नाम 'संक्षिप्त महाभारत' रक्खा गया है।

(२) जयद्रथ-वधके विषयमें आपने जो यह सुना है कि 'जयद्रथने अभिमन्युके लात मारी थी', यह बात मूल महाभारतमें देखनेमें नहीं आयी। जयद्रथने उस युद्धमें मुख्य द्वारपर सब पाण्डवोंको रोक लिया था, भीतर नहीं जाने दिया, इसी कारण अर्जुनने उसे मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, यही बात है।

(३) अभिमन्युका विवाह उत्तराके अतिरिक्त किसी भी दूसरी स्त्रीसे हुआ था, ऐसा सुननेमें नहीं आया। बलरामजीकी पुत्री वत्सलाके साथ अभिमन्युका विवाह होनेकी बात हमने किसी भी ग्रन्थमें नहीं देखी, अतः आपको कैसे बतावें ?

आपकी माताजीका स्वर्गवास हो गया तो इसमें चिन्ताकी क्या बात है? शरीर तो नाशवान् है ही; सभी व्यक्तियोंसे वियोग होना निश्चित है। अतः इस घटनासे यह उपदेश लेना चाहिये कि साधकको संसारमें किसीके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये अर्थात् किसीको भी अपना नहीं मानना चाहिये। अपना मानना ही दुःखका कारण है।

आपने लिखा कि 'स्वाध्यायमें रुचि अधिक है', सो अच्छी बात है। पर स्वाध्यायके साथ-साथ स्वाध्यायद्वारा जो विवेकका प्रकाश मिलता है, उसके अनुसार अपना जीवन भी बनाना चाहिये, इसीमें स्वाध्यायकी सार्थकता है। नहीं तो पढ़ना केवल व्यसन हो जायगा।

आपने पूछा कि 'जप करते समय मन नहीं टिकता, इसके लिये क्या करें', सो जबतक मनुष्यका अपने साधनमें और लक्ष्यमें प्रेम नहीं होता, तबतक उसमें मन नहीं लगता। अतः नामजपका जो महत्त्व सुना गया है, उसपर विश्वास करके प्रेम बढ़ाना चाहिये तथा जपका अभ्यास भी आदरपूर्वक करना चाहिये; नामजपके साथ-साथ उसे सुनते रहनेसे भी मन टिक सकता है। मन न लगनेका कारण शरीरकी कमजोरी नहीं हो सकता। बीमार आदमीका तो शरीरमें वैराग्य होनेपर भजनमें अधिकतासे मन लगना चाहिये। भगवान् प्रेमसे मिलते हैं। जो उनसे मिलना चाहता है-- उसे मिलते हैं। वह शरीरसे रोगी हो चाहे नीरोग, इससे कोई मतलब नहीं है।

(२)

सप्रेम राम राम! तुम्हारा पत्र मिला। समाचार जाने। हमारे मामूली चक्कर आता था, वह अब नहीं आता है। 'हमसे मिलनेका मन करता है', यह तुम्हारा हमारे प्रति प्रेमभाव है। तुमने लिखा कि 'इसमें घरवालोंसे संकोच होता है एवं ऐसा अनुमान होता है कि मेरे कामसे उन्हें संतोष नहीं है।' अतएव उनकी सेवा करके एवं कामको खूब तत्परताके साथ करके उन्हें संतुष्ट करना चाहिये। कार्यको भगवान्‌की आज्ञा समझकर निष्काम भावसे उसमें मन लगाना चाहिये। स्मरणशक्ति कमजोर हो गयी लिखा, सो इसके लिये ब्रह्मचर्यका पालन तथा बंगभस्मका सेवन करना चाहिये; साथ ही ब्राह्मी पत्तीका सेवन भी करना चाहिये। तुम्हारे मनमें जो यह आता है कि 'भगवान्‌की जब मर्जी हो तब वे मिलें, हैं तो वे मेरे ही; मन भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहे—यही अभिलाषा है।' सो यह बहुत उत्तम है। इस अभिलाषाको बढ़ाते रहना चाहिये। भगवान्‌को हर समय याद रखना चाहिये।

········सभीको राम राम कहना चाहिये।

(३)

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र ता० ३। ५। १९५७ का लिखा मिला। समाचार विदित हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) मांस खाना सभी मनुष्योंके लिये त्याज्य है; क्योंकि बिना प्राणी-हिंसाके मांस प्राप्त नहीं होता। प्राणी-हिंसा पाप है, यह निर्विवाद सिद्ध है। जिन देशोंकी परिस्थितिके विषयमें आपने पूछा, वहाँके निवासी यदि मांस खाना छोड़ दें तो उनके शरीर-निर्वाहकी व्यवस्था प्रभुके विधानसे अपने-आप हो सकती है। धर्मका पालन करनेवालोंको पहलेसे भयभीत नहीं होना चाहिये।

(२) छूआछूतके विषयमें आपने पूछा सो शूद्र-वर्णके साथ स्पर्श न करनेकी बात न तो समाजमें पहले प्रचलित थी और न शास्त्रमें ही शूद्रको छूनेका निषेध है। समाजके उस अङ्गसे स्पर्शकी मनाही थी, जिसके स्पर्शसे अपने अंदर दोष आनेकी सम्भावना थी—यह एक वैज्ञानिक तथ्य है।

वास्तवमें स्पर्श न करनेका विधान इसलिये नहीं बनाया गया था कि परस्पर प्रेमकी कमी हो, आन्तरिक भेदभावकी सृष्टि हो या किसीसे घृणा हो। उसका उद्देश्य तो समाजकी रक्षाके लिये था। रामायणमें जो राजघाटपर चारों वर्णके स्नानकी बात लिखी है, उससे आवश्यक छुआछूतकी मनाही सिद्ध नहीं होती। आज भी डाक्टर लोग किसी छूतके रोगीको छूकर हाथ धोते हैं और सफाई करते हैं। जब हमारी माता-बहनें रजस्वला होती हैं, तब तीन दिनोंके लिये वे अछूत मानी गयी हैं। पर इस कारण न तो वे अनादरणीय हो जाती हैं और न उनमें प्रेमकी ही कमी होती है। अतः यह प्रथा तो बहुत ही उपयोगी और आवश्यक थी, पर उसका दुरुपयोग होने लगा, इस कारण उसका विरोध हुआ।

(३) गीताका उपदेश देनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण थे और सुननेवाले उनके सखा अर्जुन थे। उन दोनोंमें कहने, सुनने और समझनेकी कैसी अपूर्व शक्ति थी—इसकी ओर लक्ष्य किया जाय तो फिर शङ्काके लिये स्थान नहीं रह जाता।

दूसरी बात यह है कि आज भी पूरी गीताके पाठमें एक घंटासे अधिक नहीं लगता। कौरवोंकी सेना उस घटनाको दूरसे देखकर इसलिये चुप रही कि सम्भव है, पाण्डव लोग विजयसे निराश होकर भय मानकर युद्ध न करें तो हम पहलेसे झगड़ा आरम्भ क्यों करें।

तीसरी बात यह है कि आपसमें बातचीत करनेमें उतना समय नहीं लगता, जितना उन सब बातोंको लिखने-पढ़ने और समझनेमें दूसरोंको लगता है।

सत्सङ्ग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१—मायासे तरनेका इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है कि सब उपायोंसे निराश होकर मायापति, मायासे तारनेवाले भगवान्‌पर विश्वास हो जाय। सब उपायोंसे निराश होकर, सर्वथा निरुपाय होकर, आश्रयहीन होकर, भगवान्‌की शरण हो जाना, उनके द्वारपर अपने-आपको बिना शर्तके डाल देना—मायासे पार होनेका सरल एवं निश्चित उपाय है।

२—भगवान्‌की कृपा जीवको तब प्राप्त होती है, जब सब उपायोंसे निराश होकर, थककर वह भगवान्‌की ओर ताकता है। ××× भगवान्‌को छोड़कर अन्य किसीका भी भरोसा, किसीसे भी आशा रखना जडता है, मोह है।

३—'परमार्थ' और 'व्यवहार' वैसे तो अलग-अलग हैं, पर दोनोंका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो सत् तत्त्व है, वह है—परमार्थ। व्यवहारमें वैसे ही भेद होता है, जैसे शरीरके अवयवोंमें भेद हैं, उनके अलग-अलग स्थान हैं, अधिकार हैं, कार्य हैं, पर उन सबमें जो परमात्मतत्त्व व्याप्त है, एक सत्य निहित है, वह एक है और वही परमार्थ सत्य है। ××× व्यवहार और परमार्थ—दोनोंका सामञ्जस्य होना चाहिये। व्यवहार हो, पर परमार्थको साथ लेकर। व्यवहार जब परमार्थके लिये होता है, तब वह शुभ होता है, उससे हमारा निश्चित मङ्गल होता है; पर जब व्यवहार परमार्थको भूलकर—जो हमारा परम धन है—होता है तो वह हमारे लिये अशुभ है। उससे हमारा अमङ्गल ही होता है।

४—एक क्षण भी मनुष्यको व्यर्थ नहीं खोना चाहिये; कारण किसी भी क्षण हमारी मृत्यु हो सकती है और उस क्षणमें यदि हमारा मन भगवान्‌से न लगकर भोगोंमें लगा हुआ होगा तो अनन्त जन्मोंकी साध, जो इस जन्ममें पूरी होनेवाली थी, उससे हम हाथ धो बैठेंगे।

५—भगवान्‌के चिन्तनसे शून्य जो क्षण है, वह व्यर्थ ही नहीं जाता, वह महान् अनर्थकारी है। एक तो हम उस क्षणमें होनेवाले भगवान्‌के चिन्तनरूपी परम लाभसे वञ्चित हुए, दूसरे उस क्षणमें हमारे मनमें जो अशुभ-चिन्तन हुआ, उसका अशुभ फल हमें भोगना ही पड़ेगा।

६—'स्मरण किया जाता है' और 'स्मरण होता है'—इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। जो स्मरण होता है उसमें भी दो भाव हैं—

(क) अभ्यासवश होता है (ख) प्रेम—आसक्तिवश होता है। स्मरणका अभ्यास करते-करते ऐसी स्थिति आ

जाती है कि स्मरण अपनेसे होने लगता है, पर प्रेम—आसक्तिसे होनेवाला स्मरण अभ्यासवश होनेवाले स्मरणसे बहुत ऊँचा है । अभ्यास बदल भी सकता है; पर प्रेमवश होनेवाले स्मरणमें बदलनेकी सम्भावना नहीं रहती । जो स्मरण 'किया जाता' है, उसमें तो नीची वृत्ति भी हो सकती है । उसमें लोभ भी हो सकता है, कामना भी हो सकती है, नीरसता तो रहती ही है; पर जो स्मरण 'होता' है, जिसके किये बिना रहा न जाय, उसमें इस प्रकारकी तुच्छ वृत्तियोंको स्थान नहीं ।

७–भगवच्चिन्तन जीवनका जीवन, प्राणोंका प्राण बन जाय तो फिर भगवच्चिन्तन कभी छूट नहीं सकता । फिर तो एक क्षणके लिये भी उसका अभाव होनेसे दम घुटने लगता है । यही वास्तविक चिन्तन है ।

८–सर्वप्रथम मनुष्यके जीवनका एक ध्येय—लक्ष्य स्थिर हो जाय और पीछे वह सोचे कि कौन-सा मार्ग मेरे लिये उपयुक्त है, कौन-सा साधन मुझे अपनाना है—इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये । शास्त्रोंमें वर्णित साधनाकी सभी पद्धतियाँ श्रेष्ठ हैं, पर सब सबके लिये नहीं हैं । उनमें अधिकार-भेद है । सत्, रज एवं तम—इन तीन गुणोंके तारतम्यसे मनुष्यकी रुचिमें भेद होता है । जैसे नदियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आती हैं और मार्ग भी सबके टेढ़े-मेढ़े होते हैं, पर सबका लक्ष्य समुद्र होता है; ऐसे ही सब साधनाके मार्ग गुणोंके भेदसे टेढ़े-मेढ़े होते हैं तथा भिन्न-भिन्न दिशाओंसे आते हुए दिखायी पड़ते हैं, पर सबका लक्ष्य है—भगवान् । लक्ष्य स्थिर होनेपर मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार किसी भी शास्त्रीय मार्गको पकड़कर चल पड़े; वह उसके सहारे भगवान्तक पहुँच जायगा । पर उसके प्रयत्नमें सच्चाई होनी चाहिये ।

९–धर्मोंका—साधनमार्गोंका एकीकरण नहीं हो सकता, उनका लक्ष्य एक हो सकता है और एक है । हमारे शरीरके सब अवयवोंका कार्य एक-सा नहीं हो सकता, पर उन सबका लक्ष्य एक है—हमारे सुखका साधन । बस, सब धर्मोंका लक्ष्य है—भगवान्को प्राप्त करना । उनकी पद्धति पृथक्-पृथक् हो सकती है ।

१०–संचितमें आग लग सकती है, पर प्रारब्धका कभी नाश नहीं होता है । हाँ, कोई नवीन प्रबल कर्म तत्काल प्रारब्ध बनकर बीचमें अपना फल भुगता सकता है और पहलेके प्रारब्धको कुछ कालके लिये रोक सकता है, परंतु प्रारब्ध भोगना अवश्य पड़ता है ।

११–भगवान्की प्राप्तिमें लगनेका नाम ही 'मानवता' है ।

१२–जिसकी जितनी आवश्यकता कम, उसके उतने पाप कम । जिसकी जितनी आवश्यकताएँ अधिक, उसके उतने पाप अधिक ।

१३–भगवान्की प्राप्तिमें सबकी प्राप्ति है । भगवान्की प्राप्तिके बिना अन्य सबकी प्राप्ति व्यर्थ है ।

१४–वाचालतामें हानि-ही-हानि है । अतएव जहाँतक हो सके, वाणीका प्रयोग कम करे, व्यर्थ न बोले । अनर्थका तो सर्वथा त्याग करे ।

१५–तीन स्थितियाँ ऐसी हैं, जिनमें मनुष्यके मनका असली पता लगता है—स्वप्न, संनिपात और पागलपन । मनुष्यकी कलई इन तीन अवस्थाओंमें खुल जाती है । अतएव मनुष्यको बाहर-भीतर एक-सा रहना चाहिये ।

१६–व्रजके भक्तोंका कैसा पवित्र जीवन रहा होगा—सब कुछ छोड़कर श्रीश्यामसुन्दरके रसमें मस्त रहना, वही चिन्तन, वही चर्चा । उस जीवनका अनुकरण भी परम पवित्र है ।

१७–जन-समूहकी ओर प्रवृत्ति मनमें बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न करती है, फिर चाहे वह परोपकारकी दृष्टिसे क्यों न हो । अतएव साधकको इससे बचना चाहिये ।

१८–साधनामें दो बातें मुख्य हैं—(क) अपना लक्ष्य ठीक करना, (ख) लक्ष्यकी ओर चल पड़ना । साधना केवल विवेचनसे नहीं होती । लक्ष्य तो स्थिर कर लिया, पर उधर चले ही नहीं, तो इससे काम नहीं होगा । वैद्यको बुलाया, निदान करवा लिया कि क्या रोग है, दवा जान ली, पर दवाका सेवन आरम्भ नहीं किया, तो इससे रोग मिटता नहीं । यही बात साधनमें है । लक्ष्य स्थिर करके शास्त्र एवं संतोंके बताये मार्गको पकड़कर चलनेसे साधनाकी सफलता सम्पन्न होती है ।

१९–साधनाको साध्यकी भाँति मानकर आदरबुद्धिके साथ उसपर चलना चाहिये । साथ ही साधनामें धैर्य होना चाहिये । कैसी भी साधना करे, उसके पीछे जीवनको लगा देना चाहिये । उकताये नहीं; बस, लगा रहे । जहाँ वह

लगा रहा, साधनाका तार न टूटा कि साध्यकी प्राप्ति होते विलम्ब नहीं होगा। जहाँ साधनामें ढिलाई हुई; वहाँ उसकी गति रुक जाती है। बुद्धि उकताकर कहती है—'छोड़ो इसको, इसमें क्या रक्खा है।' बस, साधनाका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

२०—परमार्थ-साधनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपने कामको छोड़ दे, अपने दायित्वोंका त्याग कर दे, जगह बदल ले, कपड़ा बदल ले अथवा नाम बदल ले। कहीं-कहीं ये भी कुछ सहायक होते हैं और दृढ़ वैराग्य होनेपर ये स्वाभाविक छूट भी जाते हैं; पर इनको प्रयत्नपूर्वक बदलनेकी आवश्यकता नहीं है। असलमें आवश्यकता है—उद्देश्य बदलनेकी—अपने जीवनका लक्ष्य भगवान्‌को बनानेकी। उद्देश्य बदल जानेपर काम ये ही रह सकते हैं, पर इनका लक्ष्य रहेगा भगवान्‌की प्राप्ति। जहाँ-जहाँ, जिस-जिस काममें उस लक्ष्यमें विरोध पड़ता है, वहाँ-वहाँ, उस-उस काममें प्रतिकूलताका बोध होगा और वह छूट जायगा।

२१—जीवनका उद्देश्य पहले निश्चित करना है और वह है—भगवान्‌को प्राप्त करना। इस उद्देश्यको सामने रखकर काम करने हैं और उतने ही करने हैं, जितने इसमें सहायक हैं। लक्ष्य स्थिर होनेपर कार्यका स्वरूप अपने-आप बदल जायगा। यह निश्चित हो जानेपर कि हमें काशी जाना है, फिर काशीकी ओर चल देनेपर रास्ता अपने-आप मिल जायगा। यदि हम उस दिशामें नहीं जा रहे होंगे तो वह रास्ता अपने-आप छूट जायगा। इसी प्रकार लक्ष्य भगवान् होनेपर जो काम भगवान्‌की ओर जानेमें सहायक नहीं होंगे, वे अपने-आप छूट जायँगे।

२२—पहले जीवनका उद्देश्य स्थिर हो और वह दृढ़ हो जाय। तीर लक्ष्यकी ओर स्थिर रहता है तथा संधान करनेवालेकी प्रत्येक इन्द्रिय उसकी ओर तन्मय होती है, तब तीर सीधा लक्ष्यपर जाकर उसका वेध करता है। ऐसे ही साधनामें दृष्टि भगवान्‌की ओर रहे तथा तन्मयताके साथ उस लक्ष्यकी ओर चले और लक्ष्यको बेधे।

२३—तमोगुणके संग्रहके लिये प्रयासकी आवश्यकता नहीं है। हमें चाहिये, हम निरन्तर सत्त्वगुणमें लगे रहें। सत्त्वगुणमें लगे रहनेपर भी जितना तमोगुण आवश्यक है, वह अपने-आप रह जायगा। कहीं तमोगुणके लिये प्रयास किया जाय तो फिर दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं।

२४—बुराईको किसी भी इन्द्रियसे ग्रहण न करे। यदि कहीं बुराईके वातावरणमें रहना पड़े ही तो भगवान्‌का नाम बराबर मुँहसे निकलता रहे और संतों, महात्माओं और शास्त्रोंकी वाणी याद रहे तथा उनके प्रति आदर-बुद्धि रहे। भगवान्‌का नाम और संतों-शास्त्रोंकी वाणी—ये दो 'रक्षाकवच' हैं।

२५—पैर फिसल जाय और गिरावट हो जाय—यह तो संसारमें सर्वत्र है। पर भगवान्‌की कृपापर विश्वास हो तो भगवान् उसे प्रत्येक परिस्थितिमें बचाते हैं। भगवान् रक्षा करनेवाले हों तो फिर उसे गिरानेवाला—मारनेवाला कौन है? × × × भगवान्‌की कृपापर भरोसा करके उस कृपाके बलको साथ लेकर संसारमें विचरे, फिर गिरावटका उसके लिये कोई प्रश्न ही नहीं है।

२६—गिरनेके जो मौके हैं, उससे सदा बचना चाहिये और उठनेका सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये। इन्द्रियोंके द्वार सदा खुले रहते हैं। अतः उन इन्द्रियोंको सदा लगाये रक्खे शुभकी ओर। अपने मनके विकार जिससे शान्त हों, जिससे मनमें पवित्रता आती हो, संयम, त्याग, दूसरेके हितकी भावना, भगवान्‌के भजनकी भावना आती हो, वह हमारे लिये 'शुभ' है। जिससे विकारकी भावना, काम-क्रोध, आसक्ति-लोभ आदि बढ़ते हों, असंयम आता हो, वह हमारे लिये 'अशुभ' है।

२७—बुराई बढ़ते देर नहीं लगती, वह आगकी तरह फैलती है; कारण कि हमारे मनमें बुराईके संस्कार अधिक रहते हैं और नियमतः वे सजातीय वस्तुओंको ही ग्रहण करते हैं।

२८—व्यंग्य—दिल्लगीमें भी भगवान्‌की ही बात आनी चाहिये। दिल्लगीमें भी यदि भगवान्‌का नाम आ गया तो वह तार देगा और दिल्लगीमें यदि बुरा शब्द आ गया तो वह हृदयमें जाकर बैठ जायगा और मौका मिलते ही मार देगा।

२९—वैराग्य और त्याग—ये दूसरेके लिये नहीं होते। ये तो अपने लिये होते हैं। वैराग्यके प्रति आदर होनेसे वैराग्य नहीं होता; त्यागका माहात्म्य पढ़ लेनेसे त्याग

नहीं होता। ये तो भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर तत्परतापूर्वक अभ्याससे प्राप्त होते हैं। × ××× विरागमें रस है, इसका तो अभी हमें पता ही नहीं है।

३०–जीव मनुष्य न बनकर पशु-कीट-पतंग बनता तो वह घाटेमें नहीं रहता। वह उस योनिद्वारा अपने कर्मका क्षय करता है, वह उन्नतिके मार्गपर है। पर मनुष्य बनकर भगवान्‌को भूलकर जो भोगोंमें लगता है वह तो उल्टा अपना विनाश करता है, वह अधोगतिका सामान जुटाता है। न मालूम कितनी अनन्त योनियोंतक उसे दुःख भोगना पड़ेगा—इस मानव-देहकी इस भूलके परिणाम-स्वरूप!

३१–'हमसे भजन नहीं होता'—यह कहना भगवान्‌की कृपाका तिरस्कार करना है। हमसे भजन होता नहीं, यह बात नहीं है; हम भजन करते नहीं। भजन करनेकी सामर्थ्य देकर भगवान्‌ने हमें भेजा है। भगवान् सदा हमसे मिले हैं। वे अपने-से-अपने हैं, परम आत्मीय हैं। उनसे निकट अन्य कोई वस्तु नहीं है और वे परम सुलभ हैं; पर यह सब कब है, जब हम उनका स्मरण करें, उनमें हमारा चित्त संलग्न रहे। जबतक उनमें चित्त संलग्न नहीं होगा, तबतक भगवान्‌की संनिधिका अनुभव ही नहीं होगा।

३२–दुनियाको सुधारना—यह हमारे हाथकी बात नहीं; हम स्वयं सुधर जायँ, यह हमारे हाथ है। अतएव दुनियाका 'कहना' मत देखो, दुनियाका 'करना' मत देखो। चुपचाप अपने मार्गपर चलते रहो और लक्ष्य याद रक्खो—'अपनेको चलना है, थोड़ा-सा जीवन है, मार्ग लंबा है। अतएव एक-एक क्षणका सदुपयोग करना है।'

३३–सत्कर्ममें या सद्व्यवहार करनेमें यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि सामनेवाला करेगा तो हम करेंगे। सत्कर्मकी तथा सद्व्यवहारकी शुरुआत अपनी ओरसे कर दे, फिर चाहे सामनेवाला उसका प्रतिदान करे या न करे।

३४–सेवा सेव्यकी रुचिके अनुसार होती है। उसका नाम सेवा नहीं है, जो सेव्य चाहे नहीं और हम जबर्दस्ती करें कि आपको हमारी यह सेवा स्वीकार करनी ही पड़ेगी। जिसमें सेव्यकी रुचिका आदर हो, उसका नाम सेवा है। हम करें अपने मनकी और उसे थोपें सेव्यपर—इसका नाम सेवा नहीं है।

३५–भगवान्‌की ओर लगना उसे कहते हैं कि जिसमें जितने भी इसके विपरीत संस्कार हैं, वे विस्मृत हो जायँ—नष्ट ही हो जायँ। उनके अनुसार क्रिया तो हो ही नहीं। भगवान्‌के अतिरिक्त मनमें अन्य किसीकी स्फुरणा ही न हो, कोई अन्य संकल्प न आवे, दूसरे विचारोंका उद्‌बोध न हो। आजके इस भीषण युगमें ऐसा होना कुछ कठिन है। अतः ऊपरी मनसे ही भगवान्‌की ओर लगनेका प्रयत्न करे।

३६–भगवान्‌को छोड़कर, भगवान्‌के भजनको छोड़कर अन्य जितने भी काम हैं, साधककी दृष्टिमें वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। उसे ऐसा अनुभव होता है कि उन कामोंमें मन लगाना पाप-संग्रह करना है। अतएव वह भजनके अतिरिक्त सभी कामोंमें गौणबुद्धि रखता है, अर्थात् वह काम पीछे भी किया जा सकता है। अथवा वह न भी हो तो कोई हानि नहीं। भजनमें उसकी मुख्य बुद्धि रहती है; वह उसे सबसे प्राथमिकता देता है।

३७–जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ तत्परता आयेगी ही—यह नियम है। तत्परता न होनेमें मुख्य हेतु है—श्रद्धाका न होना। किसी धन-कामीको भी यह विश्वास हो जाय कि अमुक काम करनेमें बड़ा धन प्राप्त होगा तो उस कार्यको करनेमें वह आलस्य-प्रमाद नहीं करेगा। ऐसे ही भगवान्‌के भजनमें श्रद्धा होनेपर तत्परता स्वतः आयेगी ही। अतएव सबसे पहले श्रद्धाका अर्जन करना चाहिये।

३८–पूर्ण श्रद्धा स्मरण करानेमें बड़ी सहायक होती है। श्रद्धा बराबर मनको झकझोरती रहती है—'भगवान्‌को भूलना मत, कभी भूलना मत। श्रद्धा कम होनेपर मनको स्वतन्त्रता हो जाती है और स्मरणमें भूल होना स्वाभाविक हो जाता है।

३९–साधनाके नियमोंके पालनमें दो बातोंकी सावधानी रक्खे—

(क)–अपने साथी लोग नियमोंका पालन करते हैं कि नहीं—इसकी ओर कभी दृष्टि न रहे।

(ख)–अपनी ओर बराबर दृष्टि रहे कि साधनाके नियमोंके पालनमें कहीं कोई त्रुटि न हो जाय और नियमोंके ठीक पालन होनेपर मनमें यह गर्व न आने पावे कि मेरेद्वारा नियमोंका पालन सबसे सुन्दर तरीकेसे हो रहा है।

४०–बड़ी सावधानीसे अपनी साधनाके नियमोंको प्रतिदिन देखे, प्रतिदिन उनका पाठ करे, उनका अर्थ समझे तथा उनकी बारीकियोंका मन-ही-मन विवेचन करे और यह देखे कि कहीं कोई भूल तो अपने द्वारा नहीं हुई। मन बड़ा धोखा देता है। बहुधा वह कोई-न-कोई बहाना बताकर नियमके पालनमें शिथिलता लाना चाहता है। मनके इस धोखेसे बराबर सावधान रहे और कायिक, वाचिक एवं मानसिक—किसी भी प्रकारकी कमजोरीको झाँकने न दे।

४१–'मैं भगवान्के लिये काम करता हूँ'—यह ऊँचा भाव है, पर इसमें भी अभिमानको स्थान है——'मैं करता हूँ'—फिर चाहे वह काम भगवान्के लिये हो! पर वास्तविक भक्त तो पतिव्रता स्त्रीकी भाँति 'भगवान्के लिये' काम नहीं करता; भगवान्का ही काम करता है। पतिव्रता अपने 'पतिके लिये' काम नहीं करती, वह 'पतिका ही' काम करती है।

४२–कर्म करनेमें तीन भाव हैं—कर्म करके भगवान्के अर्पण कर देना, भगवान्के लिये कर्म करना तथा भगवान्के ही कर्म करना। इनमें 'भगवान्के' ही कर्म करना सर्वोत्तम है। उसमें साधकका ही समर्पण हो जाता है। जहाँ अपना समर्पण हुआ कि फिर भगवान्से भिन्न कोई कर्म रह ही नहीं जाता। जिसका जीवन भगवान्का हो गया वह 'कर्मार्पण' क्या करे? वहाँ भगवान्से अलग उसकी सत्ता ही नहीं है, भगवान्से अलग उसका कोई कर्म रह ही नहीं जाता है—'मालिकको गोत, गोत होत है गुलामको' में इसी भावका संकेत है।

४३–मनकी तीन अवस्थाएँ हैं—मनसे भगवान्का स्मरण होना, मनका भगवान्में चले जाना तथा भगवान्का मन ही अपना मन हो जाना। श्रीगोपाङ्गनाएँ भगवान्के मनवाली थीं, अर्थात् भगवान्का मन उनका मन हो गया था—'**ता मन्मनस्काः**'। साथ ही वे भगवान्के प्राणोंसे अनुप्राणित थीं—'**मत्प्राणाः**।' इस स्थितिकी अभिलाषा करनी चाहिये।

४४–पतिव्रताका जीवन पतिका ही जीवन है, वह पतिका ही स्वरूप है। उसके द्वारा जो कर्म होते हैं, वे पतिके ही कर्म होते हैं। इसी प्रकार जो समर्पित भक्त हैं, उनके हृदयमें बैठकर स्वयं भगवान् ही कर्म करते हैं। वे भक्तको चलाते नहीं, स्वयं उसके रूपमें चलते हैं। जहाँ दूसरेको चलाना है, वहाँ कर्मानुसार, अधिकारानुसार, योग्यतानुसार—भगवान् उसे चलाते हैं, पर जहाँ भक्तके हृदयमें हृदय बनकर स्वयं उसमें अधिष्ठित हो जाते हैं, वहाँ वे स्वतन्त्ररूपसे लीला करते हैं।XXXX जहाँ भगवान् और भक्तका ऐसा सम्बन्ध हो जाता है, वहाँ जगत् और उसके सम्बन्ध नहीं रह जाते। वहाँ भक्त और भगवान् रहते हैं और एक होकर रहते हैं। वहाँ भगवान् 'लोक-संग्रह' नहीं करते। वहाँ वे सर्वेश्वर, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वव्यापी नहीं रहते। वहाँ वे भक्तके अपने भगवान् हैं, प्रियके 'प्रियतम' हैं, 'लीलाविहारी' हैं।

४५–मनमें बुराई रहे बिना बुरी स्फुरणा नहीं होती और बुरी स्फुरणा हुए बिना बुराई नहीं होती। जो साधक चाहे कि मनमें बुरा-भला जो आवे करता चलूँ और साथ ही वह अपनेको भगवान्का समझे तो यह धोखा है। अपनेको भगवान्का माननेपर मनमें बुरे कर्मोंकी वासना उठती रहे और क्रियाद्वारा बुरे कर्म बनते रहें—यह सम्भव नहीं है। भगवान्का बन जानेके बाद उसकी क्रियामें एवं मनमें बुराई नहीं आ सकती। जबतक बुराई आती है, तबतक हम भगवान्के नहीं हुए हैं—यह समझना चाहिये।

४६–भगवान्का भजन करके, यज्ञ करके, दान करके, अनुष्ठान करके किसीका अनिष्ट चाहना—यह उस देवताका एवं अनुष्ठानका अपमान करना है। भगवान् अपने भक्तकी अनिष्टकारी इच्छाको कभी सफल नहीं करते।

४७–भक्त और भगवान्में अभेद होता है। पर भक्तका कलेवर दिव्य नहीं होनेसे उस कलेवरके सीमित क्षेत्रमें ही भगवान् कर्म करते हैं। जैसे, उस भक्तकी जो भाषा है, भगवान् उसी भाषामें बोलते हैं और उस भक्तका जो कार्य-क्षेत्र है, भगवान् उसी क्षेत्रतक ही कार्य करते हैं। पर अवतारके समय भगवद्-विग्रह दिव्य होनेसे वहाँ भगवान् अपनी शक्तिके अनुरूप कार्य करते हैं।

४८–हमारे यहाँ प्रत्येक पदार्थके भौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक—तीन रूप माने हैं। जितने भी भौतिक पदार्थ हैं, उनके अधिष्ठातृ-देवता हैं और वे साकार हैं तथा उनके लोक हैं। यह हिंदूधर्मकी महान् विशेषता है।

४९–मानवकी तीन श्रेणियाँ हैं—विषयी, साधक और सिद्ध। विषयी संसारमें रचा-पचा है, साधकका मार्ग उससे

उल्टा है और सिद्धके लिये संसारका अस्तित्व ही नहीं है। साधकको उन सब विषयोंसे बचना है, जो जरा-सा भी भगवान्से दूर ले जानेवाले हैं। वह अच्छे विषयोंसे भी दूर भागता है; बुरे विषयोंकी ओर तो वह ताकता तक नहीं।

५०-साधकका प्रधान काम है—भगवच्चिन्तन। उसका मन निरन्तर भगवान्में लगा रहे, इसके लिये वह अपनी प्रत्येक इन्द्रियकी सहायता लेता है। वह बराबर ऐसी बातें सुनता है, जो भगवान्का चिन्तन करावें; ऐसी चीजें देखता है, जो भगवान्का स्मरण करावें; ऐसी चीज सोचता है, स्पर्श करता है, खाता है, सूँघता है, करता है, जिससे भगवान्का स्मरण-चिन्तन हो। इस प्रकार अपनी प्रत्येक इन्द्रिय एवं क्रियासे वह भगवान्को ही ग्रहण करता है।

जैसा अभिनय, वैसा फल

[मनोवैज्ञानिक कहानी]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'रूपनिधि! एक बात मनमें आयी है।'

'जी सरकार, क्या आज्ञा है इस बहुरूपियेके लिये······?'

'रूपनिधि! तुम हमारे राज्यके सबसे सफल बहुरूपिये हो। अभिनयकी कलामें तुम्हारी टक्करका दूसरा बहुरूपिया कोई नहीं है।'

'सरकार, आपके मनमें क्या बात आयी है? कृपा कर हुक्म दीजिये।'

'रूपनिधि! हमने कई प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके मुँहसे तुम्हरे नाना रूपों और अभिनयकी तारीफ सुनी है। तुमने न जाने कितने व्यक्तियोंको धोखा दिया है। सबको खूब छकाया है······। हर प्रकारके अभिनय करनेमें तुम कमाल कर देते हो। ······। लेकिन······।'

'सरकार, आप मेरी तारीफ कर रहे हैं······। आपने दूसरोंके मुँहसे मेरी अभिनय-कलाकी प्रशंसा सुनी जरूर है, पर······मैं स्वयं अपनी कलाकी प्रशंसा कर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू नहीं बनना चाहता······। आप क्या कहना चाहते हैं, आज्ञा दीजिये······? मुझे क्या करना है, आपकी खुशीके लिये······?'

'वही तो!' राजा रत्नेश्वर आगे कहने लगे, 'तुम मेरी सभाके एक बहुमूल्य रत्न हो······। बहुरूपियेकी कलामें जनताने तुम्हारी तारीफ की है। नाना वर्गों और प्रकृतिके आदमियोंकी नकल कर तुमने लोकप्रियता प्राप्त की है। कितनोंको छकाया या मूर्ख बनाया है। बुद्धिमें, अभिनयमें, बातचीतमें तुम्हें सबसे बढ़कर माना गया है, लेकिन तुमने हमें कभी नहीं छकाया······।'

'राजाको छकानेकी हिम्मत किसमें हो सकती है, श्रीमान्! यह तो बड़ी हिमाकत होगी।'

'नहीं, नहीं, तुम तो कोरा अभिनय ही करोगे, मनमें तो तुम अपने शासकके प्रति बड़ी प्रतिष्ठा और आदर रखते हो, यह बात हम अच्छी तरह जानते हैं।'

'तो फिर क्या हुक्म है, हुजूर?'

'एक बार हमें धोखा दो तो जानें? देखें, तुम्हारी अभिनय-कलाकी सफलता। हमपर आजमा कर देखो। कहाँतक सफलता मिलती है?'

'सरकार, मैं तो बहुरूपिया हूँ। अच्छा-बुरा, देव-दानव, सभ्य-असभ्य, शिष्ट-अशिष्ट, सज्जन-दुर्जन, राजा-रंक, भोगी और संन्यासी, योगी और सिद्ध पुरुष—सब प्रकारके व्यक्तियोंका रूप बना सकता हूँ।'

'रूपनिधि! तुम कोई ऐसा अभिनय और विचित्र रूप बनाओ कि हम सब देखकर चकित—विस्मित रह जायँ। चतुर समझनेवाले लोग बेवकूफ बन जायँ। बहुरूपियेका कमाल तब है, जब वह अपने बेमिसाल अभिनय, वेश-भूषा, बोलचाल, आचार-व्यवहारसे एक बार तो सबको मूर्ख बना डाले। तुम राज्याश्रित बहुरूपिये हो। हम तुम्हारी अभिनय-कलाकी परख करना चाहते हैं। सच्चे सोनेको कसौटीपर जब चाहो कसो, वह खरा सोना निकलता है।'

रूपनिधिको प्रेरणा मिली। कलाकारको अपनी कलाके प्रदर्शनकी इच्छा हो उठी।

'तारीफ तो बहुत की सरकार, लेकिन······,' वह बोला।

'कुछ और चाहते हो?'

'यदि मैं आपको सफलतापूर्वक धोखा दे सकूँ, तो कुछ इनाम भी मिलना चाहिये ।'

राजा रत्नेश्वर खुशीकी मनःस्थितिमें थे ।

आखिर बहुरूपियेने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली थी । बड़ा आनन्द रहेगा । देखें, यह बहुरूपिया हमें कैसे मूर्ख बनाता है । यह सोचकर राजा बोले—

'रूपनिधि ! हमें यह देखकर खुशी है कि तुम अपनी अभिनय-कलाकी परख करानेमें कतई पीछे नहीं हटे हो''' । जिस कलाकारमें वास्तवमें योग्यता होती है, वह अपनी कला-को परखवानेमें कभी पीछे नहीं हटता । मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे चेहरेपर उत्साहकी आभा है, जो एक सच्चे कलाकार-के मुखमण्डलपर पायी जाती है । अपनी अभिनय-कलाके सफल प्रदर्शनपर तुम्हें राज्यकी ओरसे नकद पाँच सौ रुपयेका इनाम मिलेगा''''' । पर हमें पूरा धोखा लग जाना चाहिये । समझे !'

'पाँच सौ रुपये !' इनामका नाम सुनते ही रूपनिधि-का चेहरा खुशीसे चमक उठा । 'पाँच सौ रुपये !!'

वह बोला, 'जैसी आज्ञा सरकार ! मैं जाता हूँ''''' । आपको यह बहुरूपिया खरा मिलेगा''' । आपसे इनाम लेना है''''''खुश करके''''''।'

'देखें, तुम कैसे हम सबको मूर्ख बनाते हो ? जाओ''''''।'

और बहुरूपिया रूपनिधि राजा रत्नेश्वरकी सभासे चला गया । वह सोचता जाता था कि ऐसी क्या युक्ति हो सकती है कि राजाको ठगा जा सके और वह मूर्खोंकी गिनतीमें आ जाय ? नाना योजनाएँ उसके मनमें थीं ।

× × × ×

संसारमें अनेक सुख हैं, पर कलाकारकी कलामें सफलताका—विजयका सुख सबसे बड़ा है । अपने उद्देश्यमें सिद्धि मिलना बड़ी बात है । कलाकार जब अपनी चिर-संचित इच्छा और आकाङ्क्षाओंको पूर्ण हुआ देखता है, तो उसे आत्मामें संतोष मिलता है । यह मानसिक संतोष एक प्रकारकी आध्यात्मिक खूराक है, जिसके मिलनेसे आत्मबलमें असाधारण वृद्धि होती है ।

विजय अकेली नहीं आती । वह अपने साथ अनेक सम्पत्तियाँ लाती है, जिसके वैभवसे मनुष्यका मन, शरीर और आत्मा जगमगाने लगता है । जिसने अपनी कलामें सफलता प्राप्त की है, उसके गलेमें लक्ष्मीकी वरमाला पड़ती है । संसार उसके आगे मस्तक झुका देता है । वह समाज सदासे विजयी और सिद्धोंकी पूजा करता आ रहा है । जिसने अपना छुपा हुआ पराक्रम प्रकट किया है, उसकी महानता स्वीकार की गयी है । इसीलिये मनुष्य-जीवनमें प्राप्त हो सकनेवाली सम्पदाओंमें सफलताको, सिद्धिको सर्वोपरि स्थान दिया गया है । सफलतारूपी महान् सम्पदाको हर कोई चाहता है, पर जिनमें दृढ़ता, साहस, पौरुष, पराक्रम, लगन और परिश्रमशीलता है, वे ही इस सम्पदाके अधिकारी होते हैं । बहुरूपिया रूपनिधि ऐसी ही अभिनय-कलाका साधक था । सोचते-विचारते आखिर उसने राजा-को मूर्ख बनानेकी एक तरकीब सोच निकाली और तुरंत उसे कार्यान्वित करना शुरू कर दिया ।

× × × ×

थोड़े दिन बाद—

उसी राजधानीके बाहर एक विशाल वटवृक्षकी घनी छायामें एक सिद्ध योगीने अपना आसन जमाया है । वह नंगा रहता है, एक लँगोट बाँधे । उसके सारे शरीरपर भभूति लगी हुई रहती है, जटाजूट बढ़ गयी है । 'शिव'के पवित्र नामकी ध्वनि उसके मुँहसे सुन पड़ती है । भक्तजनोंका कहना है कि यह महात्मा केवल शौचादिके लिये ही उठता है, अन्यथा सदा धूनीपर ही भगवत्-चिन्तन किया करता है । वह हर समय योगसाधनामें लगा रहता है । भक्तजन सर्वत्र छाये रहते हैं, जैसे पुष्पोंके चारों ओर लुब्ध भ्रमर ! सट्टेके नंबर पूछनेवालोंके जमघट लगे रहते हैं । अनेक भक्त अपनी घरेलू, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओंको दूर करनेकी तरकीबें पूछने चले आते हैं ।

इस महात्माकी कीर्ति चारों ओर कस्तूरीकी सुगन्धकी तरह फैल रही है ।

आखिर वे इतने पहुँचे हुए महात्मा हैं । सारा जीवन ही भगवच्चिन्तन किया करते, हर समय तपस्यामें निरत रहते । भक्तजन सदा उनके आस-पास बैठे रहते और समीपके शहर और देहातोंमें उनकी योगसाधनाकी चर्चा किया करते ।

धीरे-धीरे वे उस क्षेत्रमें विख्यात हो गये । उनके धर्म-के प्रति अटूट श्रद्धा, संन्यास, भक्ति और साधनाकी खबर

फैल गयी। उनके आश्रममें दूर-दूरसे लोग दर्शन और प्रवचन सुननेके लिये आते थे। उनके द्वारा होनेवाले छोटे-बड़े अद्भुत चमत्कारोंकी चर्चा सुनी जाती थी। प्रायः ऐसा विश्वास जम गया था कि उन्हें कोई देवी-देवताकी सिद्धि प्राप्त है।

ऐसे महान् तपस्वी, भक्त, विद्वान्को देखनेके लिये लोगोंका ताँता बँधा रहता था। उत्सुक नर-नारी, भोले भावुक ग्रामीण, गरीब मजदूरोंने उस आश्रमको तीर्थ-जैसा पवित्र मान लिया था।

समाचार उड़ते-उड़ते राजाके पास पहुँचा।

'महाराज! उस योगीके मुखमण्डलपर सिद्धिकी आभा है। उनके दर्शनमात्रसे अविद्यारूपी अन्धकार दूर होता है और विवेकका सूर्य उदित होता है। उनके सत्संगसे आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभ प्राप्त होता है। अतः उनके दर्शन कीजिये।'

राजाके मनमें महात्माके दर्शनोंकी कामना बढ़ी। जिन सिद्ध पुरुषको देखकर लोग धन्य हो रहे हैं, राजा क्यों न उन्हें देखना चाहेगा?

लेकिन साधारण पुरुषों और राजाके दर्शनोंमें अन्तर है। साधारण पुरुष यों ही भक्तिभावसे दर्शनोंके लिये चले जाते हैं। पर राजाको राजसी ठाटसे ही दर्शनोंके लिये जाना चाहिये।

राजाकी वह दर्शन-यात्रा निराली थी!

एक थालमें हीरे-मोती और असंख्य स्वर्णमुद्राएँ, दूसरेमें मूल्यवान् रेशमी वस्त्र, तीसरेमें फल-फूल और चौथेमें स्वादिष्ट मिष्टान्न लेकर राजा रत्नेश्वर महात्माजीके दर्शन और सत्संगके लिये उपस्थित हुए। बड़ी धूम-धाम थी। महात्माके शिष्योंने राजा रत्नेश्वरके आगमनकी सूचना दी—

'राजा रत्नेश्वर महाराजके दर्शनोंके लिये आश्रममें पधारे हैं। क्या आज्ञा है, महाराज?'

योगीने अपने नेत्र खोले। वे कुछ बोले नहीं। बस देखते रह गये अपलक। तबतक राजा उनके सामने थे।

उन्होंने देखा, सामने राजा भक्ति-भावसे विह्वल हाथ जोड़े खड़े थे। नेत्र श्रद्धासे झुके हुए थे। वे भक्ति-रसमें सराबोर थे, विनयावनत!

'कौन हो तुम?' महात्माजीने अर्द्धनिमीलित नेत्रोंसे क्रुद्ध स्वरमें पूछा।

'मैं इस प्रदेशका राजा रत्नेश्वर हूँ महाराज! प्रजाका सेवक! आपका दास!! आशीर्वादका भिखारी!!! आज आपके इस विख्यात आश्रममें आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गया हूँ······।' विनयपूर्वक राजाने उत्तर दिया।

लेकिन यह क्या! योगीपर इसका विपरीत प्रभाव दिखायी दिया! आँधी तूफानकी तरह रौद्रस्वरूप। वह शिवके ताण्डव नृत्यकी तरह विकराल हो उठा!

राजाने आश्चर्यसे देखा कालकी तरह महात्माकी भ्रुकुटि चढ़ गयी थी! वे क्रोधमें भयंकर स्वरूप धारण किये हुए थे। यकायक क्रुद्ध हो उठे थे। साक्षात् मृत्युकी तरह कराल। ऐसी नाराजगीका कोई कारण राजाको न दिखायी दिया।

क्रोध साधुके लाल-लाल नेत्रोंसे अंगारोंकी तरह बरस रहा था। महात्माजी हीरे-मोती और स्वर्णमुद्राओंके थालकी ओर संकेतकर नाराज हो कहने लगे—

'राजा रत्नेश्वर! यह माया-मोह—यह धन-सम्पत्ति, यह रुपया-पैसा, यह चाँदी-सोना,···यह सब भला मेरे पास क्यों लाये हो? यह माया ठगनी है। नासमझ राजा! याद रक्खो, आदमीका जितना लौकिक भोगोंमें—धन-सम्पत्ति, माया-मोह, स्वर्ण-रत्न, रुपया-पैसा आदिमें मोह होता है, उतना यदि वह ईश्वरसे प्रेम करे तो निःसंदेह उसका संसार-सागरसे उद्धार और उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है···। तुम इस अपनी धन-सम्पत्तिको बड़ी ही गौरवकी वस्तु समझते हो, इसीलिये इसे देकर मुझे ठगने आये हो···? यह कभी मत भूलो कि पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणाकी क्षुद्र भावनाओंसे प्राणी दुःख पाता है। क्षुद्र माया-मोहके कुचक्रसे बचो···। मौतको याद रक्खो···। यह मृत्यु मनुष्य, जीव-जन्तु किसीको भी नहीं छोड़ती। यदि तुम इससे बचना चाहते हो तो अपने आत्माको पहचानो और ज्ञानवान् होकर मृत्युसे डरो···। इस क्षुद्र मायाको मेरे लिये क्यों लाये हो? मुझे मायाके कुचक्रमें फँसाना चाहते हो?···ले जाओ अपने इन सोने, चाँदी, स्वर्ण-मुद्राओंके थालोंको······। हम विरक्तोंको इस माया-मोहसे क्या काम है ······?'

यों कहते-कहते महात्माका चेहरा मानो रोषसे तमतमा उठा। अङ्ग-अङ्ग फड़क उठा!

'आज महाराजको यह क्या हो गया ! इनमें तो कभी जरा-सा भी रोष हमने आजतक नहीं देखा । क्या होगा इसका परिणाम ? उफ् !' उनके चेलोंने फुस-फुसाकर कहा ।

महात्माजीका क्रोध केवल बोलने या कुटिल भ्रूभङ्गिमा-तक ही सीमित न रहा । गुस्सेमें आकर उन्होंने वे थाल नौकरोंके हाथोंसे छीन लिये । हीरे-मोती, सोना-चाँदी आदि मूल्यवान् वस्तुएँ फेंक दीं, शाल-दुशाले तितर-बितर कर दिये और भेंटकी सारी वस्तुएँ छोड़कर नाक-भौं सिकोड़-कर यह कहते-कहते उठकर अंदर जाने लगे—

'हम माया-मोहसे दूर विरक्त संन्यासी हैं । हमें धन-सम्पत्तिकी चमक-दमक दिखाकर पथभ्रष्ट करने क्यों आये हो ?'

कितना उच्चकोटिका चरित्र था । महात्माकी निःस्पृहतासे आस-पासके सभी व्यक्ति प्रभावित थे ।

'महाराज ! क्षमा कीजिये···क्षमा कीजिये···मुझे अपनी करनीपर बड़ी आत्मग्लानि हो रही है······। भविष्यमें ऐसी गलती न होगी···। मायाका कण भी आपके समक्ष न आयेगा···पर···पर···।'

महात्मा जाते-जाते रुके, पूछा—'बोलो, क्या कहना चाहते हो ?'

'महाराज ! ठहरिये । जाते-जाते मुझे कुछ संदेश तो देते जाइये । बड़ी लालसासे आया हूँ ।' कातरभावसे राजा रत्नेश्वर प्रार्थना करने लगे ।

महात्मा उपदेश करते हुए बोले—'रत्नेश्वर ! अनजान-अज्ञानी लोग धनसंग्रह, भोग-विलास, शान-शौकत आदि बाह्याडम्बरोंको ही जीवनकी सफलता मानते हैं । कुछ लोग मान-प्रतिष्ठा, ऊँची स्थिति, सामाजिक सम्मानको ही उन्नति-की अन्तिम सीढ़ी मानते हैं, कुछ लोग पद-अधिकारके पीछे पागल रहते हैं । किंतु तुम यदि गम्भीर चिन्तन करके देखो, तो तुम पाओगे कि यह धन-सम्पत्ति, मान-प्रतिष्ठा, पद-अधिकार सब धूल-मिट्टीकी तरह क्षणिक है । परमानन्द-की प्राप्ति ही मनुष्यके जीवनकी वास्तविक सफलता है······। तुमने चाहे कितना ही धन-संग्रह क्यों न किया हो, किंतु पता नहीं, यह वह कब नष्ट हो जायगा । यह मूल्यवान् जीवन धनरूपी कंकड़-पत्थरोंको संग्रह करनेके लिये नहीं बना है···। ले जाओ, अपने कंकड़-पत्थरोंको······।'

राजापर इस उपदेशका बड़ा प्रभाव पड़ा । श्रद्धासे अभिभूत वे महात्माके चरणोंपर गिर पड़े ।

'देव ! मैं धन्य हो गया आप-जैसी दैवी विभूतिके दर्शन और सत्संगसे ।'

राजा महात्माके चरण नहीं छोड़ रहे थे ।

तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी । यह ऐसी अजीब घटना थी, जिसकी किसीको स्वप्नमें भी आशा न थी ।

लोगोंने देखा कि महात्माके रुखमें सहसा परिवर्तन आ गया ।

अरे, यह क्या ! स्वामीजीने अपनी नकली दाढ़ी-मूँछें और जटाजूट उतार फेंके ! भभूत पोंछ डाली । कर्कश स्वर बदलकर शिष्ट विनयशील बन गया । देखते-देखते वे बदलकर कुछ-के-कुछ बन गये ।

लोगोंने आँखें फाड़-फाड़कर देखना जारी रक्खा । ओफ ! यह क्या करिश्मा है ? यह कैसा रहस्य है ? अब तो वे वृद्धसे जवान दिखायी देने लगे । उनका स्वर भी जाना-पहिचाना प्रतीत हुआ ।

क्या यह अभिनय था ?

सचमुच, यह अभिनय ही था । बहुत लंबा दीर्घ-कालीन अभिनय ! स्टेजपर किया गया अभिनय तो कुछ घंटोंका ही होता है, लेकिन यह अभिनय दिनों, सप्ताहों, महीनों, वर्षोंमें फैल चुका था ।

'महाराज ! मैं आपका वही पूर्वपरिचित रूपनिधि बहुरूपिया हूँ । आपने आज पाया कि मैंने आपको धोखा दे दिया है । आप मेरी अभिनय-कलासे पूरी तरह परास्त हो गये हैं । मैंने जो प्रण किया था, वह आज पूरा हुआ है ।'

सब कुछ देख-सुनकर राजा आश्चर्यमें पड़ गये ।

बोले, 'अरे ! रूपनिधि, तो यह तुम निकले ! खूब, तुमने तो दर-असल अभिनय-कलामें कमाल ही कर दिया है । सचमुच मैं तो पूरी तरह ठगा गया···मूर्ख बन गया । तुम्हारा इनाम पक गया ।'

राजा हैरतमें पड़े थे ।

'अरे, लाखोंके हीरे-मोती तुमने मिट्टीमें फेंक दिये । स्वर्णमुद्राएँ यत्र-तत्र बिखेर दीं, मूल्यवान् शाल-दुशाले वापस लौटा दिये···अजीब आदमी हो···। क्यों न उन रुपये-सोना

जवाहरातोंको रख लिया ? इस अतुल धनराशिको रखकर तो कई पीढ़ियोंके लिये तुम धनकी चिन्तासे मुक्त हो गये होते ? खैर, तुम्हें भरपूर इनाम मिलेगा'' 'खूब धन दूँगा ।'

बहुरूपिया यह सब सुनता रहा ।

'क्यों, रुपये-पैसेकी ओर तुम कोई रुचि नहीं दिखा रहे हो ?'

बहुरूपिया चुप था, सोच-विचारमें डूबा हुआ ।

राजा बोले—'क्या इनाम चाहिये अब ? जितना माँगोगे, उतना ही दिया जायगा । तुम चुप क्यों हो ? बोलो तो कितना चाहिये ? क्या चाहिये ? हम तुम्हारी अभिनय-चातुरीसे बेहद खुश हैं ।' राजा गद्गद हो उठे ।

रूपनिधि बोला—'महाराज ! सिद्ध पुरुष, योगी और महात्माका अभिनय करते-करते, भजन-पूजन-स्वाध्याय तथा सद्ग्रन्थोंके पठन-पाठन एवं वैराग्यका अभ्यास करते-करते अब मुझे सांसारिक भोगविलास और माया-मोहसे सच्ची विरक्ति हो गयी है । अब मुझे इन क्षुद्र वस्तुओंमें तनिक भी आकर्षण नहीं प्रतीत हो रहा है । मुझे उच्च आध्यात्मिक जीवनमें ही तात्त्विक आनन्द आने लगा है । इस धन-सम्पत्तिको पाकर मैं फिर दुनियाके विशाल मोह-जालमें नहीं फँसना चाहता । मैं जिस जीवनका अभिनय कर रहा था, उसीमें सचाईसे रहकर अब भगवच्चिन्तन और मोक्षलाभ करना चाहता हूँ । मुझे सांसारिक माया-मोहसे वास्तवमें पूर्ण विरक्ति हो गयी है । मुझे अब आत्मज्ञान हो गया है । मैं क्षुद्र मायाके फंदेसे छूट चुका हूँ । आपकी प्रेरणासे संन्यासी-जैसा अभिनय करते-करते मेरी स्थायी प्रवृत्ति वैराग्य तथा ज्ञानकी ओर हो गयी है और उसीके फलस्वरूप आज मैं बहुरूपिया न रहकर सच्चा साधु हो गया हूँ । आपकी कृपासे ही मुझे यह लाभ हुआ, इससे मैं आपका कृतज्ञ हूँ । पर भला अब मैं आपका इनाम लेकर क्या करूँगा ?'

'रूपनिधि ! तुम धन्य हो । तुम्हारी कर्तव्यशीलता अनुपम है । तुम नकली जीवनमें भी महात्मा और साधु पुरुषका अभिनय करते-करते वैरागी—सच्चे साधु बन गये हो । भारतीय संस्कृतिका जो यथार्थ रूप तुमने आज प्रस्तुत किया है, उसका मुझपर भी स्थायी प्रभाव पड़ा है । अपने इस माया-मोह और धन-सम्पत्तिसे मुझे भी आज घृणा हो गयी है । मैं भी आज इस भोगोंके विलासी जीवनका त्याग करता हूँ । तुम मेरे गुरु बने, मैं तुम्हारा शिष्य ।'

राजा फिर रूपनिधिके चरणोंमें बैठ गये ।

उस दिनसे राजा रत्नेश्वर भी वैरागी बन गये । हम जैसा अभिनय करते हैं, वैसी ही मानसिक प्रवृत्ति बनती है । एक दिन वही हमारा असली स्वरूप बन जाता है ।

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥

(अथर्ववेद ५ । २३ । १३)

अर्थात् अपने बाह्य और आन्तरिक द्वेष हम ऐसे ही नष्ट करें, जैसे आगमें जलकर या पत्थरसे कुचलकर गंदी चीजें नष्ट हो जाती हैं ।

सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है

सत्यधर्मं समाश्रित्य यत्कर्म कुरुते नरः । तदेव सफलं कर्म सत्यं जानीहि सुव्रते ॥
नहि सत्यात्परो धर्मो न पापमनृतात्परम् । तस्मात् सर्वात्मना मर्त्यः सत्यमेकं समाश्रयेत् ॥
सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः । सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ॥
सत्यरूपं परं ब्रह्म सत्यं हि परमं तपः । सत्यमूलाः क्रियाः सर्वाः सत्यात्परतरो नहि ॥

(महानिर्वाण-तन्त्र ४ । ७४—७७)

भगवान् शंकर देवी पार्वतीसे कहते हैं—'सुव्रते ! मनुष्य जो सत्यधर्मका आश्रय लेकर कर्म करेंगे, वे अवश्य सफल होंगे, यह तुम सत्य जानो । सत्यसे बढ़कर श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है और मिथ्यासे बढ़कर कोई पाप नहीं है । इसलिये मनुष्योंको सर्वभावसे एक सत्यका आश्रय लेना चाहिये । सत्यसे रहित पूजा व्यर्थ है, सत्यरहित जप व्यर्थ है, सत्यहीन तप व्यर्थ है, वैसे ही जैसे ऊसर भूमिमें बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है । परब्रह्म सत्यरूप है, सत्य ही परम तप है, समस्त क्रियाएँ सत्यमूलक ही हैं । सत्यसे बढ़कर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है ।

श्रीश्रीविष्णु-तत्त्व (२)

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

विष्लृ—व्याप्तौ (जुहोत्यादि उभयपदी अनिट् १३) धातुसे **'वेवेष्टि विश्वं'** इस भावमें **'विषेः किच्च'** (उणादि पञ्चपादी ३ । ३९) इस **उणादि सूत्रसे 'कित्'** प्रत्यय करनेसे (प्रचलित **'णु'** अधिकारमें **स्थो णुः**—स्थाणु, वेणु, रेणु आदिके समान) 'विष्णु' शब्द निष्पन्न होता है । इस तरह व्यापक ब्रह्म ही विष्णु है । प्रकारान्तरसे विष्णु ही कारण-सूक्ष्म-स्थूल-प्रपञ्चानुगत विराडादि स्वरूप ब्रह्म है । वही पूर्ण परमात्मा परब्रह्म ही विष्णु या महाविष्णु या नारायण वासुदेवादि शब्द-वाच्य है और एकमात्र वही भूमा या पूर्ण तत्त्व है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

भौतिक विश्वमें सब स्त्री-पुरुष-प्राणी-पदार्थ-भाव अपूर्ण ही हैं । अतः इन्हें प्राप्त होनेसे रसेप्सा और तीव्र होती है—**'भूय एवाभिवर्धते'** । पर उस पूर्ण रस-सिन्धुस्वरूप विष्णुरूप पूर्ण प्रभुको पानेसे पूर्णतृप्ति एवं निवृत्ति होती है—**'परं दृष्ट्वा निवर्तते'** । यहाँतक कि उनके स्मरण-भजनसे भी शनैः-शनैः निवृत्ति होने लगती है, अन्यथा नहीं—

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

और जबतक विविध विभिन्नतायुक्त विश्व दृष्टिगोचर होता है, तबतक कामनादिसे घोर अशान्ति, क्लेश तथा नरकका अन्त होना सम्भव नहीं है—

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

पर अज्ञानसे ही तथा बिना विचार किये ही यह महादुःखरूप संसार भासित हो रहा है । वास्तवमें इसके प्रत्येक कण-कणमें प्रभु ही निविष्ट हैं । माया तथा अज्ञानके पर्देसे स्वयमेव आवृत होनेसे ही हमें वे प्रभु दीख नहीं पड़ते । उन पूर्ण परात्पर परमात्माके दीखे बिना सुख-शान्ति, मुक्ति या पूर्णताकी उपलब्धि सम्भव नहीं । वेदान्तमार्गके अनुसरण करने तथा निश्छल भावसे शरण लेनेसे केवल वे ही दृष्ट होने लगते हैं[1] और तब यह सारा-का-सारा संसार, पता नहीं, स्वयं कहाँ गायब हो जाता है, कुछ पता ही नहीं चलता । वास्तवमें भगवान्‌की विस्मृतिका ही नाम संसरण, नरकवास, मायादर्शन या संसारका दीखना है और यह जबतक, जहाँ कहीं, जितने अंशमें भी दीखता रहता है, महा-दुःखरूप ही है—**'दुःखालयमशाश्वतम्'**[2] (गीता ८ । १५), **'अनित्यमसुखं लोकम्'** (गीता ९ । ३३) पर भाग्यहीन, अविचारपूर्ण, अविवेकी इसी अपूर्ण या अल्पमें सुखकी आशा किये नरक भोगता रहता है—**'नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम् ।'** (छान्दो० ७ । २३) । **'भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ।'** (वेदान्तदर्शन १ । ३ । ८) ।

१—(क) वेदान्तमार्गमाश्रित्य दर्शनार्थं विचक्षणः ।
उपायं यः करोत्यस्य तद्दर्शनफलं लभेत् ॥
(शिवपुराण, कोटिरुद्रसं० ४३ । १२)

(ख) मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।

(ग) निर्मल मन जन सो मोहि पावा ॥

(घ) जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः । (गीता ६ । ९)

२—(क) दुःखाङ्गारकतीव्रः संसारोऽयं महानसो गहनः ।
(जैन, वैराग्यशतक)

(ख) यह संसार काँटकी बाड़ी, उलझ पुलझ मर जाना है ।
(कबीर—भजनसंग्रह, भाग १ गीताप्रेस पृ० २१७)

(ग) यह जग है काँटेकी बाड़ी, देख-देख पग धरणा ।
(संतवाणी अंक, गोरखवाणी, कल्याण, गीता०)

(घ) विषमोऽयं संसारोरगः, भोगीव दशति, असिरिव छिनत्ति, कुन्त इव वेधयति,··· पावक इव दहति, हरति प्रज्ञां, नाशयति स्थितिं,··· न तदस्ति किंचिद्दुःखं संसारी यन्न प्राप्नोति । (योगवासिष्ठ २ । २ । १५)

'यह संसार' सर्प बड़ा भीषण है । कुटिल सर्पके समान डँसता है । तीक्ष्ण तलवारकी तरह मर्मच्छेदन करता है, बर्छी तथा शूलके तुल्य हृदयको बींधता है, पावकके समान हृदयको दग्ध करता है··· किमधिकम्, कौन-सा ऐसा क्लेश है, जो संसारी नहीं पाता ।

अनबिचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी ।
(विनयपत्रिका १२१ । ४)

अयमविचारितचारुतया संसारो भाति रमणीयः ।
अत्र पुनः परमार्थदृशा नहि किमपि सारमणीयः ।

'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।' (योगदर्शन २ । १५; सांख्यदर्शन ६ । ७-८)

श्रुति गुरु साधु समृति संमत यह दृश्य असत दुखकारी ।
तेहि बिनु तजे भजे बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी ॥
(विनयपत्रिका १२० । ४)

वास्तवमें संसारकी यह भीषण भयंकरता एकमेव **'श्रीविष्णोः परं निर्भयम्'** के नित्य-निरन्तर ध्यान-स्मरणसे ही अपसार्य है । यह संसार भी दीखे और भगवान् भी दीखें, यह शक्य नहीं है--

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं, रबि रजनी इक ठाम[3] ॥

अन्तरदृष्टे यस्मिञ्जगदिदमारात् परिस्फुरति ।
दृष्टे यस्मिन् सकृदपि विलीयते क्वाप्यसद्रूपम् ॥

× × ×

पूर्णात्पूर्णतरे परात्परतरेऽप्यज्ञानपारे हरौ
संवित्स्फारसुधार्णवे विरहिते वीचीतरङ्गादिभिः ॥
भास्वत्कोटिविकासितोज्ज्वलदिगाकाशप्रकाशे परे
स्वानन्दैकरसे निमग्नमनसां न त्वं न चाहं जगत् ॥
(प्रबोधसुधाकर १६३, १६५)

अर्थात् अन्तर्हृदयनिविष्ट उस विष्णुतत्त्वको न देखनेतक ही चारों ओर यह विश्व स्फुरित होता दीखता है । यदि वह प्रभु किसी प्रकार एक बार भी दीख जाय तो पता नहीं, यह असद् विश्व कहाँ विलय हो जाता है । पूर्णसे भी पूर्ण, परात्पर, प्रशान्त, विशुद्ध संवित् (ज्ञान) सुधार्णव, कोटि-मार्त्तण्ड-प्रकाशपूर्ण प्रभुमें लीनमनस्क प्राणीके लिये तो मैं, तू और यह सारा विश्व ही विलुप्त हो जाता है ।

अथवा सभी स्थावर-जङ्गमात्मक प्राणी-पदार्थ, देश-काल, भाव-क्रिया-कारण-कार्य-संघातमें अनुस्यूत—प्रविष्ट होनेसे ही वह (ब्रह्म) 'विष्णु' है । विश् धातु६ ठे (६ । १४०) —तुदादिगणमें प्रवेशनार्थक हो है[5] । 'विशतेर्वा नुक्' (विष्णुसहस्रनाम, शांकरभाष्य, श्लोक—१४) तथा

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥
(श्रीविष्णुपुराण ३ । १ । ४५)

(वायुपुराण ३ । ८८ । ४९), (ब्रह्मपुराण ७ । ७५), (ब्रह्माण्डपुराण ३ । ६३ । ४९), (हरिवंश १ । ११ । ४५), (विष्णुपुराण ४ । २ । ४०), (विष्णुधर्म १ । ९ । ६०) आदिमें भी भगवान् विष्णुके तत्र-तत्र प्रवेशकी चर्चा है । तैत्तिरीय उपनिषद् २ । ६ की श्रुति भी कहती है—**'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत ।'**—वह परमात्मा समस्त प्राणी-पदार्थ, देश-काल, कार्य-कारण-संघातात्मक इस विश्वको रचकर उसमें प्रविष्ट हो गया—सर्वत्र अनुस्यूत हो गया । इसलिये यह विश्व वास्तवमें भगवद्भिन्न नहीं है । सब संहिताएँ—मुण्डकोपनिषद्की श्रुति कहती है कि 'यह सब कुछ परम-पुरुष विष्णुका ही रूप है—'पुरुष एवेदं सर्वम् ।' (ऋक्-संहिता १० । ९० । २, सामवेद ६१९, अथर्व० १९ । ६ । ४,

३—(क) जित देखौं तित स्यामनयी है । ··· अलख ब्रह्म छबि स्याममयी है ।

(ख)

औचक अगाध सिन्धु स्याहीको उमड़ि आयो
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संगमें ।
··· ··· ···
यों ही मन मेरो मेरे कामको न रह्यो माई,
स्याम रंग है करि समानो स्याम रंगमें ॥

देवकविकी प्रेमचंद्रिका, जगत्, ब्रह्म, आत्म-तत्त्वदर्शनपचीसियों-में तथा रसानन्दलहरी आदिमें ऐसे सैकड़ों कवित्त हैं ।

४—ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । (गीता १८ । ६१)

५—विष् या विश् धातुके चार भेद एवं अर्थ हैं—

(क) विश—प्रवेशने—to enter or to go into (६ । १४०), विशति, विवेश आदि, द्रष्टव्य कुमारसम्भव ५ । ३०, रघुवंश ६ । १०, १२; ४ । ७० इत्यादि ।

(ख) विश—व्याप्तौ to peradev or surround. (३ । १३ प०) वेवेष्टि

(ग) विषु—सेचने— to sprinkle, pour ant (३ । १ पर०) वेषति, परिवेषति इत्यादि ।

(घ) विष—विप्रयोगे, to separate disjoin. विष्णाति, वेष्टा इत्यादि (९ । ५४) ।

शुक्लयजुःसंहिता ३१ । २, तैत्तिरीयारण्यक ३ । १२ । १), **'पुरुष एवेदं सर्वम्'** (मुण्डकोपनिषद् २ । २ । १०), **'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्'** (मुण्डकोप० २ । २ । ११) इत्यादि । अतः निस्संदेह यह सारा कार्य-करण-संघात विष्णु है, काल-कर्म-गुण-स्वभाव, कर्त्ता-कारयिता, भोक्ता-भोग्य, प्रेरक-प्रेर्य-प्रेरणा—सब विष्णु ही तो है—**'भोक्ता भोग्यं प्रेरयितारं च मत्वा'** (श्वेताश्वतर० उप० १ । १२), **'वासुदेवः सर्वमिति'** (गीता ७ । १९), **विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् । द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥** (विष्णुपुराण १ । १७ । ८४), **'सकलमिदमहं च वासुदेवः'** (विष्णु० ३ । ७ । ३२) ।

प्रेरक तत्त्व

वास्तवमें जो सब-कुछकी प्रेरिका शुभ शक्ति है, वह भी ईश्वर-विष्णुतत्त्व ही है । यों काल-कर्म-गुण-दोष-स्वभावादि[६]को भी प्रेरक हेतु कहा है—"काल कर्म गुन स्वभाव सबके सिर खपत ।' इत्यादि । पर प्रभु उनके भी प्रेरक हैं । यह वेदान्तदर्शन २ । ३ । ४१-४२ सूत्रोंमें विस्तारसे समझाकर सारी शङ्काओंको निर्मूल कर दिया गया है । कौषीतकिब्राह्मण ३ । ८ की औपनिषद श्रुति भी यही कहती है—**'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते ।'** तथा बृहदारण्यक ५ । ७ । २२ की श्रुति भी कहती है—

'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरो यमयति ॥'

'सो तस तेहि छन होइ ।'

अर्थात्—वही आत्मान्तरमें बैठा सबका नियमन—शुभाशुभ कर्म कराता है । गीता भी कहती है—**मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च** (१५ । १५) । मेरे द्वारा ही (यथाकर्म) प्राणियोंकी स्मृति तथा स्मृति-लोप होता है । स्वयं श्रीभगवान् ही भागवत आदिमें श्रीब्रह्माजीसे कहते हैं कि 'आपने जो तपस्या की और मेरी स्तुति की, वह सब मेरा ही अनुग्रह है'—

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् ।
यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥

(मत्स्यपुराण २७३ । १३-१५, श्रीमद्भा० ३ । ९ । ३८)

भागवतमें ही वृत्रासुर भी कहता है कि **'इन्द्र ! यह** समस्त भूतवर्ग कठपुतलीकी भाँति उस परमेश्वर विष्णुके ही परतन्त्र है'—

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ।
एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥

(श्रीमद्भा० ६ । १२ । १०)

गोस्वामी तुलसीदासजी भी इसीका भावानुवाद करते हुए लिखते हैं—

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत राम गुसाईं ॥

वे वास्तवमें अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्वदर्शी महात्मा थे । अतः वे बार-बार इस प्रकारकी बातें लिखते हैं । यथा—

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥ (मानस० ७ । ११३ । १), तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ (वही २ । ४४ दोहा), माया प्रेरक सीव (३ । १५), गुन-प्रेरक सही । (३ । ३१ छंद १ । १), तव प्रेरित मायाँ उपजाए । (५ । ५८ । ३) । इसी तरह मानस शब्दसागरके (पृष्ठ ४१६ परके) प्रेरई, प्रेरक, प्रेरा, प्रेरि, प्रेरी, प्रेरित, प्रेरे, प्रेरेऊ आदि शब्दोंको जो मानसमें ३८ बार आये हैं, खोजकर गीताप्रेसकी प्रतिमें देखना चाहिये[७] ।

इसी तरह विनयपत्रिकामें—**'प्रेरकानंत वन्दे तुरीयम्'** (५३ । ३) आदि हैं । उनके मतसे शुभ विचारों तथा मनके प्रेरक भी ये श्रीभगवान् हैं—

मेरौ मन हरिजू हठ न तजै ! हौं हार्यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसय प्रबल अजै । ××तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ (विनयपत्रिका ८९ । ४) मूल निदानका ही अनुसंधानकर दोष चिकित्स्य होता है, अतः मूल प्रेरक ही प्रार्थ्य है—

दोष निलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत श्रुति टेरें ।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरें ॥

(विनय० १८७ । ३)

६-(क) कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा । (श्वे० १ । २)
(ख) पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥ (गीता १८ । १३-१७) इत्यादि ।

७-श्रीबद्रीदासजी अग्रवाल ८३, बिडिन स्ट्रीट, कलकत्ता-६ ने गीताप्रेसकी प्रतिके अनुसार ही शब्द तथा संख्या देकर इसे बड़े ही श्रमसे तैयार किया है । पुस्तक बहुत उपयोगी है । मूल्य २० बीस रुपये हैं ।

तुलसिदास यह बिपति बागुरौ तुम्हहिं सों बनै निबेरें ॥

(विनय १८७। ५)

यहाँ 'कहत संत श्रुति टेरें।' देहली-दीपक-न्यायसे दोनों पंक्तियोंमें ही लग सकता है। चरण-शरण लेनेवालेको अतः कभी अविद्या-क्लेशादि नहीं, विद्या-माया ही व्यापती है।

हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या॥

(रामचरितमानस ७। ७८। २)

इसीलिये पाण्डवगीता, महाभारत आदिमें दुर्योधनका वचन मिलता है—

'केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'

(पाण्डवगीता, पञ्चदशी आदि)

भागवतके 'कृत्यमस्ति गदाभृता' (पृथुवचन ४। २१। २९)।

'योऽन्तःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्'

(श्रीमद्भा० ४। ९। ६)

आदिसे भी समस्त शुभ शक्तियों तथा क्रियाओंके भी प्रेरक कारयिता वे प्रभु ही हैं।

वह परमात्मा विष्णु ही सबकी शक्ति तथा बल है; यह केनोपनिषदादिके यक्षोपाख्यानमें स्पष्ट है। प्रह्लाद भी कहते हैं—

'स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।'

(श्रीमद्भा० ७। ८। ८)

हनुमान्‌जी भी कहते हैं—

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥

× × × × ×

जाकें बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

इत्यादि। (मानस-सुन्दरकाण्ड, दो० २१)

इस प्रकार सब देखने-समझने तथा उनकी शरण लेनेसे ही शान्ति मिलती है—

'मामेकं शरणं व्रज', 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम्।
प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम्॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ३२)

प्रभु कहते हैं कि इस प्रकार जब साधक अपनेको पञ्चभूत, गुण, आशय, इन्द्रियादिसे रहित देखने लगता है, तब वह मुझसे ही संयुक्त हो जाता है, उसके कर्मजाल, संशय तथा सारे बन्धन कट जाते हैं—

यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः।
स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन् स्वाराज्यमृच्छति॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ३३)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥

(श्रीमद्भा० १। २। २१, योगवासिष्ठ ५। १३। ५, ३। ७ १०, पञ्चदशी पृ० २००, निर्णयसागर १९४५ का सं०, मुण्डक-उपनिषद् ३। २। ११, २०, ३० इत्यादि)

सच बात तो यह है कि कर्मजाल-ग्रन्थि और कटना क्रिया भी वे ही हैं। उन्हें छोड़कर कहीं भी कुछ है ही नहीं। केवल वे ही वे हैं। [क्रमशः]

सब तुम्हीं हो

'मेरा' कुछ भी है नहीं, कोई प्राणि-पदार्थ।
'मैं' भी जब कुछ नहीं, तब, कैसा मेरा स्वार्थ॥
एक तुम्हीं हो सभीमें, सभी जगह सब काल।
लीलामय कर रहे नित लीला विविध रसाल॥
जन्म-मरण, सुख-दुःख सब मधुर-भयानक रूप।
खेल, खिलौने सब तुम्हीं खेलनहार अनूप॥

८—विशेष जानकारीके लिये 'विनयपीयूष' भाग ६ की सूचीमें 'प्रेरक' शब्द देखिये।

९—इस प्रकरणकी कुछ शङ्काओंपर सुन्दर विवेचन अगले अंशमें प्राप्त हो सकता है।

प्रकृतिमण्डलमें रहनेपर भी श्रीवृन्दावनकी अप्राकृतता

अस्ति किल कलितनिखिलवृन्दावनं वृन्दावनं नाम वनम् । यत्र ज्योतिश्चक्रमिव व्योम्नि, धर्म इव धर्मिणि, तत्त्वनिर्णय इव वेदे, सुखमिवाभीप्सितलाभे, रस इव विभावादिवर्गे, षाड्गुण्यमिवात्मनि, स्वयमिव स्वप्रेमणि, नारायण इव परमव्योम्नि, सर्वेषामाश्रयः स च कृष्णः सतृष्णज्जनानुभवनीयतया निजां निजाश्रयणीयतामुरीकरोति ॥ (उत्तरगोपालचम्पूः, प्र० पू० ३)

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी प्रकारके वृन्दोंकी आश्रय-रूपसे रक्षा करनेवाला श्रीवृन्दावन नामक एक वन है। जिस वनमें आकाशमें नक्षत्रमण्डलकी तरह, धर्मयुक्त व्यक्तिमें धर्मकी तरह, वेदमें तत्त्वनिर्णयकी तरह, स्वकीय अभीष्ट-लाभमें सुखकी तरह, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव आदिके समूहमें रसकी तरह, अपनेमें अर्थात् श्रीकृष्णमें—समग्र ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य—इन छः गुणोंकी तरह, अपने प्रेममें अपनेकी तरह, परव्योम (श्रीवैकुण्ठ) में श्रीनारायणकी तरह सभीके आश्रयस्वरूप वे श्रीकृष्ण अपनेमें तृष्णा रखनेवाले जनोंके अनुभवनीयरूपसे अपनी नित्य आश्रयणीयताको अङ्गीकार करते हैं। अर्थात्—आकाशमें नक्षत्रमण्डल जैसे नित्य रहता है, धार्मिक व्यक्तिमें धर्म जैसे नित्य रहता है अथवा अग्नि आदि पदार्थोंसे उष्णत्व आदि धर्म जैसे नित्य रहता है, वेदमें तत्त्वनिर्णय जैसे नित्य रहता है, अभीष्ट-वस्तुके लाभमें सुख जैसे नित्य रहता है, विभावादि वर्गमें रस जैसे नित्य रहता है, अपनेमें (श्रीकृष्णमें) षडैश्वर्य जैसे नित्य रहता है एवं अपने प्रेममें श्रीकृष्ण स्वयं ही जैसे नित्य रहते हैं तथा वैकुण्ठमें श्रीनारायण भगवान् जैसे नित्य रहते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण श्रीवृन्दावनमें नित्य विराजमान रहते हैं। तात्पर्य यह कि श्रीवृन्दावन-धाम नित्य है। यहाँके सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह प्राकृतकी तरह प्रतीत होकर भी प्राकृत नहीं हैं; क्योंकि वे सूर्य आदि ग्रह वृन्दावनके स्वकीय तेजके द्वारा उत्तम रूपसे दीप्तिशाली एवं चित्-शक्तिके प्रकाश-विशेष होनेके नाते अप्राकृत हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी नरलीला प्राकृतकी तरह प्रतीयमान होकर भी जिस प्रकार अप्राकृत एवं चिन्मय है, उसी प्रकार उनके परिकरगण एवं उनकी लीलाएँ तथा उनके धाम आदि भी अप्राकृत तथा चिन्मयस्वरूप हैं। यह वृन्दावन पृथ्वीका तिलक-स्वरूप होकर भी प्राकृतभूखण्डविशेष नहीं है; क्योंकि महावैकुण्ठनाथ आदिके अंशीस्वरूप होकर भी, श्रीकृष्ण जिस प्रकार प्राकृत मनुष्यकी तरह लीला करते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार उनका लीलाधाम—श्रीवृन्दावन महावैकुण्ठ आदि भगवद्धामोंका अंशीस्वरूप होकर भी भूविशेषकी-सी लीलाओंसे युक्त है। फलतः भगवान् श्रीकृष्ण आकारसे मनुष्यकी तरह प्रतीत होकर भी, जैसे प्राकृत मनुष्य नहीं कहे जा सकते, उसी प्रकार यह वृन्दावन प्राकृत भूविशेषकी तरह परिलक्षित होकर भी प्राकृतभूमिविशेष नहीं कहा जा सकता ॥ ३ ॥

यत्र चान्तर्धानविद्यया विद्यमानमस्मदादीनामालोकमतीतं धाम गोलोकनाम स मामनन्ति । यत्र च गोलोके सकलचिन्तामणीयमानचिन्तालेशः केशवः सर्वानन्दभासिनां तद्वासिनां प्रेमनामपञ्चमपुमर्थसम्पत्पर्युदञ्चन-प्रपञ्चसंचयव्यसनममुञ्चंस्तद्वशत एव यथायथं पुत्रादितया विलसन्न कुत्रापि व्यभिचरति ॥ ४ ॥

विज्ञजन भी कहते हैं कि जिस श्रीवृन्दावनमें 'गोलोक' नामक धाम विद्यमान है, वह धाम अपनी अन्तर्धान-विद्यासे हम-जैसोंके दृष्टिगोचर नहीं हो पाता है और जिस गोलोकमें सभी प्रकारके भावुक-भक्तोंकी अभिलाषा-पूर्तिके लिये, चिन्तामणिका-सा आचरण करनेवाली चिन्ताके लेशसे मुक्त श्रीकृष्ण, सभी प्रकारके आनन्दोंसे प्रदीप्त होनेवाले गोलोकवासियोंके 'प्रेम'नामक पञ्चम पुरुषार्थ सम्पत्तिरूप ऋणके विस्तारमय संचयके व्यसनको न त्यागते हुए (अर्थात्—गोलोकवासियोंके सदैव ऋणी बनकर) उनके प्रेमके वशीभूत होकर ही, यथायोग्य पुत्र-मित्रादिरूपसे विलास करते हुए अन्यत्र कहीं भी नहीं जाते हैं ॥ ४ ॥

तादृशात्तस्मादेव च निष्क्रम्य रम्यतया तैः सममसमं प्रकाशमानः स खलु खलनाशनस्तदिदं जगदपि कदाचित् प्रमदयति; दिव्यनृत्यनायक इव नेपथ्यस्थानादथ तद्वत्तत्र प्रविशति च ॥ ५ ॥

और खलोंको नष्ट करनेवाले वे श्रीकृष्ण उस प्रकारके दिव्यातिदिव्य लोकोत्तर श्रीगोलोकधामसे ही बाहर निकलकर, रमणीयभावसे उन्हीं गोलोकवासियोंके सहित अतुल्यरूपसे प्रकाशित होकर, कभी-कभी इस मायामय

जगत्‌को भी हर्षित कर देते हैं एवं दिव्य नृत्यनायक जिस प्रकार नेपथ्यस्थान (वेष-रचनागृह) से बाहर निकलकर रङ्गमञ्चपर स्वेच्छानुसार नृत्य आदिका विस्तार कर पुनः नेपथ्यस्थानमें ही प्रविष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी गोलोकसे निकलकर जगत्‌में अपनी लीलाओंको प्रकाशित कर पुनः उसी गोलोकमें प्रविष्ट हो जाते हैं*॥ ५॥

विज्ञानकी कसौटीपर मन्त्र

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री)

इस चमत्कारोंके युगमें मन्त्रकी चर्चा करना उपहासास्पद ही लग सकता है; क्योंकि मानव सदेह स्वर्ग जानेकी सुनिश्चित पृष्ठभूमि तैयार कर चुका है। उसके इन प्रयासोंके क्या परिणाम होंगे—यह तो भविष्य ही बतायेगा, फिर भी विज्ञानकी ये बहिरङ्ग सिद्धियाँ मन्त्रके सूक्ष्म सत्यको असत्य सिद्ध नहीं कर सकतीं। वैसे तो 'विज्ञान' शब्दका क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें ऐन्द्रिय और इन्द्रियातीत सभी उपलब्धियाँ आ जाती हैं; किंतु आज इस शब्दका जिस विद्या और क्षेत्रके लिये प्रयोग किया जा रहा है, वह सीमित है। विज्ञान किसी निश्चित परम्पराका नाम नहीं होता, बल्कि वह तो एक तथ्यात्मक परम्पराका पर्याय है। आज जिसको विज्ञानसम्मत माना जाता है, उसका अपना परिवेश है; किंतु इससे उन सारी आस्थाओंको असत्य या संदिग्ध नहीं माना जा सकता, जिन्हें मानवने उपलब्ध किया और भोगा है। मन्त्र भी ऐसी ही आस्था है, जिसका पूर्वापर है और परिणाम है। यदि आजकी प्रयोगशालामें उसको नहीं बनाया जा सकता तो इसका यह अर्थ कथमपि नहीं होता कि वह सत्य नहीं है। आजके वैज्ञानिक उपकरण और उनके परिणाम जड जगत्‌से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये वे सारे प्रकार, जिनका सीधा सम्बन्ध चेतनसे है, जड उपकरणोंसे सिद्ध कर दिये जायँ—यह सम्भव हो ही नहीं सकता। इन अर्थोंमें मन्त्र चेतन विज्ञान है और इसका प्रयोग व्यक्तिके स्तरपर ही होता है।

'मन्त्र सत्य हैं तो क्यों?' जिस प्रकार हेतुवादी या कारण-सापेक्ष आधुनिक विज्ञान यह प्रश्न कर सकता है तो उसी आधारपर प्रश्नका प्रतिप्रश्न भी हो सकता है कि 'मन्त्र असत्य हैं तो क्यों?' और इस प्रतिप्रश्नका कोई आधार नहीं हो—ऐसी बात नहीं है। हमारे दैनिक जीवनमें जब शब्दोंका इतना बड़ा महत्त्व है तो फिर यह सामान्य बोधकी-सी बात है कि मन्त्रोंमें भी तो वही भाषा है; किंतु यहाँ और विशेषतः इस युगमें इस प्रश्न-प्रतिप्रश्नसे न समाधान हो सकता है, न विश्वास ही। फिर भी यह निश्चित है कि मन्त्रको या उसकी शक्तिको पाना केवल व्यक्तिपर ही निर्भर है। इसको नितान्त निजी और व्यक्ति-व्यवहारका ही विषय माना गया है।

मन्त्रकी सत्यताको व्यवहार और अनुभवसे तो जाना जा सकता है, पर उसमें 'सत्य' है, इसका सम्मत, सापेक्ष और कारणवादी आधार भी है; किंतु उसको समझनेके लिये

*यह लेख श्रीजीवगोस्वामिद्वारा विनिर्मित, सिद्धान्तकी दृष्टि एवं माधुर्यकी दृष्टिसे परिपूर्ण, अलौकिक असाधारण अतिशय विशाल ग्रन्थरत्न "श्रीगोपालचम्पूः" से उद्धृत किया गया है। इस ग्रन्थमें इस प्रकारके अद्भुत सिद्धान्तमय अनेक लेख हैं। यह श्रीमद्भागवतके सम्पूर्ण दशमस्कन्धके अनुसार विवेचनात्मक दार्शनिक दृष्टिसे लिखा गया है। यह दो खण्डोंमें (पूर्व-उत्तर) में विभक्त है। इसकी रचनाशैली बड़ी विचित्र है, 'पदेपदे' सुस्वादु है। नाटकोंकी-सी छटा पद-पदपर दिखायी देती है। 'श्रीगीतगोविन्द'-जैसे सैकड़ों गीत भी प्रत्येक लीलाके अन्तमें विद्यमान हैं। इसके अध्ययनसे श्रीकृष्णके नाम, रूप, लीला, परिकर एवं धामका तत्त्व हस्तामलकवत् प्रतीत हो जाता है। इसके दोनों खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इसकी हिंदी-टीका भी संस्कृतके अनेक मौलिक ग्रन्थोंके रचयिता महाकवि श्रद्धेय श्रीबनमालिदास शास्त्रीजी महाराजके द्वारा सिद्धान्त-प्रदर्शनपूर्वक लिखी गयी है। यह ग्रन्थ अक्षरशः निर्णयात्मक विशुद्ध छपाई-सफाईसे युक्त एवं लगभग १८०० पृष्ठोंकी ठोस सामग्रीसे परिपूर्ण कल्याण-साइजमें सजिल्द प्रस्तुत है। दोनों खण्डोंका मूल्य २२.५० मात्र है। डाकव्यय पृथक् है। प्राप्तिस्थान—श्रीवनमालिदास शास्त्री, मु० श्रीकृष्णानन्द स्वर्गाश्रम, वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०

भारतीय वातावरण और प्राचीन विज्ञान-विधिको स्वीकार करना होगा। प्राचीन विधि भी वैज्ञानिक थी; क्योंकि उसमें भी प्रकृतिके रहस्योंको अनुद्घाटित किया गया था और क्रमबद्ध ज्ञान था। उसके आधार भी गणितकी तरह विश्वजनीन और निश्चित थे। जिन शब्दोंको हमने 'मन्त्र' माना है और जिनके साधनसे हमें भौतिक चमत्कार और आत्मदर्शन-जैसी सिद्धियाँ मिलती हैं, उनके गठनमें ही उनका रहस्य निहित है; किंतु इस विषयपर कोई पूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता। प्रसंगवश सूत्ररूपमें प्रायः सभी ग्रन्थोंमें इसका वर्णन मिलता है। भारतीय दर्शन 'शब्द'को ब्रह्मका प्रतीक मानता है और उसको 'अक्षर' कहनेका तात्पर्य भी यही है कि वह ब्रह्मकी तरह ही अव्यय और अविनाशी है। शब्दमें प्रतीकोपस्थापनकी अद्भुत और अपूर्व क्षमता है और यह क्षमता देववाणीमें स्पष्ट और सशक्त रूपमें विद्यमान है। उदाहरणके लिये 'स्नेह' शब्दको लें। स्नेहके दो अर्थ सर्वज्ञात हैं—'अनुराग' और 'तैल'। अनुराग एक सूक्ष्म अभिव्यक्ति किंवा अनुभूति है और तैल एक स्थूल पदार्थ। पर इन दोनोंमें स्नेहकी एकरूपता और गुण हैं, जिनके द्वारा हम स्थूलसे सूक्ष्मका परिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिस तरह तैलकी एक बूँद सारे सरोवर-पर छा जाती है, इसी तरह स्नेहकी रागात्मिका वृत्तिका गुण है कि वह स्नेह-योग्यको और स्वयंको इतना विस्तृत बना लेता है कि सबको ढाँप ले। स्नेह शब्दका यह प्रतीकोपस्थापन यदृच्छाघटित बात नहीं है।

यथार्थतः शब्दोंका किंवा मन्त्रोंका गठन पूर्ण वैज्ञानिक और व्यवस्थित सिद्धान्तके आधारपर हुआ है। आज-की वैज्ञानिक भाषामें जिनको 'एलेमैंट' कहा जाता है, उससे भारतीय तत्त्व भिन्न हैं; पर समग्र संसारको इन्हीं तत्त्वोंके भिन्न मात्रिक अनुपातके रूपमें गठित माननेकी मान्यतामें कोई अन्तर नहीं है। भारतीय दर्शन भी भौतिक निर्माणका अथ-इति इन्हीं पाँच तत्त्वोंकी माया मानता है, इसलिये इनमें दृश्य या अदृश्य परिवर्तन एवं नियन्त्रण करनेमें उसका विश्वास है; पर वह स्थूलसे स्थूलमें परिवर्तन करनेकी अपेक्षा स्थूलमें सूक्ष्मसे परिवर्तन करना अधिक उपयुक्त और स्थायी मानता है। प्रश्न यह है कि 'मन्त्रोंकी शब्दावलीके जपसे क्या कोई परिवर्तन इस स्थूल प्रकृतिमें सम्भव है ?' आजके भौतिक विज्ञानके अनुसार तो मन्त्रोंकी ध्वनि (आडिबल साउण्ड) कोई महत्त्व नहीं रखती; क्योंकि एक ध्वनिके वर्षोंतक अनवरत उच्चारणसे नगण्य-सी ऊर्जा उत्पन्न होती है। हाँ, कर्णातीत तरंगें उत्पन्न करनेपर वह ऊर्जा कुछ क्षणोंमें ही उत्पन्न की जा सकती है; किंतु वह कर्णातीत ध्वनि-तरंग मानवके शरीरतन्त्रसे उत्पन्न नहीं की जा सकती। यह आजके विज्ञानकी मान्यता है, जो केवल ध्वनि और उसकी कर्णातीत तरंगों-तक ही सीमित है। भारतीय जपविधि तो ऐसे जपमें विश्वास करती है, जिसमें श्रव्य ध्वनि होती ही नहीं और उसका प्रभाव होता है। इसको माननेका प्रत्यक्ष और सत्य कारण है। मन्त्रोंमें जिन शब्दोंका प्रयोग होता है अथवा जिन शब्दोंसे मन्त्रका गठन होता है, वह अपने-आपमें इसका प्रबल कारण है। यह तो सुविज्ञात बात है कि इस संसारमें पाँच तत्त्वोंके सिवा कुछ भी नहीं है; इसलिये जिन शब्दोंको प्रतीकोपस्थापनके योग्य माना गया, वहाँ उनका आत्मदर्शन किया गया और फिर उनका स्वरूप निश्चित किया गया। वर्णमालाके क, च, ट, त और पवर्ग तथा प्रत्येक वर्गमें पाँच ही अक्षर होना—इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इन शब्दोंका इन तत्त्वोंके साथ कोई अनिवार्य सम्बन्ध है। जहाँसे (मुखमें) इन अक्षरोंकी ध्वनिका श्रव्य (मूलरूपमें स्फोट जहाँ होता है, वह तो योगशास्त्रका विषय है और साधारणतया उस स्फोटको मूलरूपमें न सुना जा सकता है, न किया ही जा सकता है। व्यवहारमें जो भी उच्चारण हम करते हैं, उसमें स्वरका योग होता ही है; पर एक स्थिति वह भी होती है, जहाँ प्रत्येक व्यञ्जन भी बिना स्वरके बोला जा सकता है।) रूप बनता है, वे स्थान कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ हैं; इनमें भी इन तत्त्वोंके गुण और प्रकृति स्पष्टतया दिखते हैं। इसका फलितार्थ यह हुआ कि यहाँ वस्तुको देखकर शब्दावलीको निश्चित तो किया गया, पर उसमें तत्त्वोंका अनुपात, बाह्य आकृति, गुण और परिणामोंका आयाम देखनेके बाद ही उन शब्दोंका या उन आयामोंके प्रतीक लघुत्तम इकाई—अक्षर-समूहका संयोजन किया गया।

जिस तरह भाषाके मूलमें यह अक्षरविधि है, उसी तरह मन्त्रोंमें बीज-मन्त्रोंका एकाक्षर-प्रकार है। बीज-मन्त्रोंमें सूक्ष्मके द्वारा स्थूलपर सीधा प्रभाव डाला जाता है। तत्त्वोंका इस संसारके साथ जब सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध है तो इन बीज-मन्त्रोंकी अथवा इतर मन्त्रोंकी ध्वनिके द्वारा उनमें परिवर्तन होना सम्भव ही नहीं, आवश्यक भी

है। कर्णातीत तरंगें शायद उस जपमें उत्पन्न नहीं होती हैं, पर तरंगें तो निश्चित रूपसे बनती हैं। हो सकता है, आनेवाले युगमें उनका भी नामकरण हो जाय। यह विवेचन नितान्त भारतीय दृष्टिकोणसे किया जा रहा है, पर आधुनिक वैज्ञानिक विद्या और शब्दावलीके पूर्वाग्रहसे हटकर यदि इस विषयको सोचा-समझा जायगा तो इसमें सत्य स्वयं उद्भासित होता प्रतीत होगा।

शब्दको सर्वसमर्थ माना है हमने और उसका प्रयोग हमारी दैनिक सिद्धियोंमें हम प्रतिदिन देखते हैं; किंतु इसका पारमार्थिक और शक्तिमन्त रूप मन्त्रोंमें देखनेको मिलता है—पाँच तत्त्व और उनकी पाँच तन्मात्राएँ। आकाशका शब्द, पवनका स्पर्श, तेजका रूप, जलका रस और पृथिवीका गन्ध—यह इनका क्रम है तथा इस अनुलोम-विधिमें एकसे दूसरे तत्त्वमें उन तन्मात्राओं अथवा गुणोंका संक्रमण होता रहता है अर्थात् आकाशमें केवल शब्द है तो पवनमें शब्द और स्पर्श तथा पृथिवीमें पाँचों ही गुण विद्यमान हैं। यह क्रम इनका सृजनपरक है, संहारमें स्थिति विपरीत हो जाती है अर्थात् पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज पवनमें और पवन आकाशमें समाहित हो जाता है। यदि सांसारिक पदार्थमें किसी भी एक तत्त्वका सर्वांशतः लोप हो जाता है तो वह पदार्थ उत्क्रान्त हो जाता है। सम्मोहन, उच्चाटन और मारण आदि कार्योंके लिये जिन ध्वनियों अथवा मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है, वे शब्द तरंगोंके रूपमें गमन करते हैं और जहाँ सम्मोहन, वशीकरणमें अनुलोम-विधिसे अनिवार्य आवश्यकता उत्पन्न करते हैं, वहाँ प्रतिलोम-विधिसे उत्क्रान्त भी कर देते हैं। सारांश यह हुआ कि मारण-कर्ममें जिन मन्त्रोंका प्रयोग किया था, वे सशक्त तरंगोंके रूपमें अभीष्ट व्यक्तिके शरीरपर प्रभाव डालते हैं और एक तत्त्वको (यदि वायुतत्त्वको ही मुख्यतः कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी) इस रूपमें उग्र कर देते हैं कि दूसरा या निकटस्थ तत्त्व त्वरित गतिसे नष्ट होने लगता है और उन तत्त्वोंके अनुपातमें अव्यवस्था होनेका अर्थ होता है—मृत्यु, उत्क्रान्ति और उच्चाटन।

शब्दके साथ उसकी लय अनिवार्य रूपसे जुड़ी रहती है। जहाँ शब्द इन पाँच तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, वहाँ लय हमारी ग्रन्थियोंको उत्तेजित करती है। प्रत्येक अक्षरकी एक निश्चित लय होती है और सांसारिक कार्य-साधनके लिये जिन अक्षरोंका संयोजन करके मन्त्रके रूपमें जपा जाता है तो उसके साथ उसकी लय भी प्रकट होती है। शब्दके अर्थके साथ भावनाको यदि हम एकरूप नहीं भी कर सकें तो भी लयके साथ एकरूपता तो होगी ही। सामान्यतया भाषाके रूपमें प्रयुक्त शब्दावली लयके साथ अर्थबोध कराती है और उस अर्थबोधसे जो उत्तेजन किंवा प्रतिक्रिया होती है, उसमें लयका विशिष्ट स्थान है। मन्त्रोंमें लय एक स्वाभाविकता है और वह उस शब्दावलीके साथ जन्मना जुड़ी हुई है। लयसे उत्तेजन होता है—इसका उदाहरण हम देखते हैं; क्योंकि कई बार शब्दोंके अलावा केवल वाद्य-यन्त्रोंसे ही जब विशेष प्रकारकी लय उत्पन्न की जाती है तो उससे हमारे हर्ष, शोक, साहस आदि भावोंमें उत्तेजना होती है। फिर इन मन्त्रोंमें प्रतीकोपस्थापन और प्रतिनिधित्वके अलावा अनुरूप लय भी तो है। इस लयके कारण उत्तेजना होती है और शब्दोंसे वह उत्तेजन गुणित हो जाता है।

भारतीय मान्यताके अनुसार (यदि आजके पारिभाषिक शब्दोंमें कहें तो) इस स्थूल पुरुषके शरीर-तन्त्रसे अधिक शक्तिमान् और समर्थ विद्युत्-पुरुष और होता है। उसे हम चेतन भी कह सकते हैं। मन्त्रोंकी साधनासे विद्युत् जागरण होता है और व्यक्तिकी प्रसुप्त शक्ति जाग्रत् होकर कार्यक्षम रूप धारण कर लेती है। बिजलीके लिये दूरीका अस्तित्व नष्ट हो जाता है, हजारों मीलकी यात्रा क्षणोंमें पूरी हो जाती है। ठीक उसी तरहसे विद्युत्-पुरुषके जाग्रत् होनेपर दूरीका लोप हो जाता है और उससे नाना प्रकारके कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। यह चेतनका विज्ञान है, सूक्ष्मका परिज्ञान है।। इसलिये मन्त्रोपासनामें जिन पूर्व-साधनाओं (प्रिकाशनरी मेजर्स) का ध्यान रखनेका आदेश है, वे सब उस सूक्ष्म तन्त्रपर प्रतिकूल प्रभाव होनेसे बचाती हैं और अनुकूल प्रभाव होनेसे योगदान करती हैं। यह उस विद्युत्-पुरुषके वातावरणका निर्माण है। वास्तविक प्रभाव तो शब्द और उसके साथ जुड़ी हुई लयका ही है।

मानव-धर्म

(लेखक—पं० श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट)

प्रत्येक मनुष्यके लिये यह ईश्वरीय आदेश है कि वह अपने जीवनको ऐसा बनावे कि उससे मानव-जातिके संस्कार तथा आचार व्यवहार अधिक उन्नत हों और मानव-जाति सत्य, प्रेम और प्रकाशकी ओर दिन-प्रति-दिन आगे बढ़े।

जीवन पवित्र है, सनातन है। इस युग-युगान्तरव्यापी अखण्ड जीवन-प्रवाहमें मूल्य उन्हीं कर्मोंका है, जिनसे मनुष्य-जाति समुन्नत होती है, अधिकतर पूर्णता लाभ करती है। उस साधन-शक्तिसे युक्त होती है, जिसके द्वारा जातीय जीवनकी धारा परमात्मसत्ताके महासमुद्रसे जा मिलनेके लिये प्रधावित होती है।

पर कर्मके साथ अपूर्णता लगी हुई है। दोष और दुःख कर्मसे पृथक् नहीं होते। हर्ष, शोक, विफलता, राग-द्वेष, पाप-पुण्य कर्मकी रग-रगमें समाये हुए हैं। इन सब कठिनाइयोंपर विजय पानेके लिये हमारे शास्त्रोंके आदेश एवं ऋषि-मुनियोंके उपदेशमें आत्मबल तथा उत्साह-प्राप्तिके लिये सद्वृत्ति (गुण) के साधन निहित हैं।

व्यक्तिगत जीवनमें तीन विशेष साधन हैं, जिनसे जीवनकी नींव दृढ़ होती है और जितना चाहें उतना ऊँचा भवन तैयार होता है। वे हैं—ब्रह्मचर्य, शुद्ध सात्त्विक वृत्ति एवं स्वाध्याय। इनके बिना बाहरसे स्वच्छ होना असम्भव है। ब्रह्मचर्यकी उत्कृष्ट साधनाके बिना इन्द्रियोंको विषयकी ओर जानेसे रोकना कठिन है, विषयोंमें फँसनेसे बचना कठिन है। गाढ़े पसीने और ईमानदारीसे कमाये हुए धनसे जो आहार होगा, वह हमारी आन्तरिक वृत्तियों, भावों, विचारों एवं आचरणोंको शुद्ध रक्खेगा। स्वाध्यायसे जीवनका उत्थान होता है, बुद्धिका विकास होता है, ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अपने स्वरूपका बोध होता है, कर्तव्यका निश्चय होता है और प्रगतिके मार्ग मिलते हैं। स्पष्ट है कि पवित्रता केवल ब्रह्मचर्य और शुद्ध सात्त्विक वृत्तिसे ही विश्वमें कहीं अधिक अंशोंमें प्राप्त हो सकती है, अन्य किसी भी साधनसे नहीं।

इसके अतिरिक्त धैर्य, ज्ञान, यज्ञ, तप, तेज, अस्तेय, अलोलुपता, अपैशुनता, अचपलता भी वे गुण हैं, जो मानवको पूर्ण बनानेमें सहायता देते हैं। हर एक अपनी-अपनी जगहपर सामर्थ्यवान् हैं। पर प्रेम और दयाके बिना मनुष्यताका आना सम्भव नहीं है। ब्रह्मचर्य एवं शुद्ध सात्त्विक वृत्तिकी प्राप्तिमें जितनी कठिनाई है, उतनी प्रेम और दयाके मार्गमें नहीं, बल्कि प्रेम और दयाके मार्गमें अग्रसर होनेसे उल्लास एवं उत्साहकी प्राप्ति होती है। यदि सत्य, प्रेम और दयाको निकाल दें तो किसी धर्ममें या मनुष्यमें कुछ रह ही नहीं जाता। अहिंसा, अक्रोध, अद्रोह, नम्रता, कोमलता, सरलता, शान्ति, सहनशीलता, क्षमा, त्याग, दान, परोपकार—दयाके साथी हैं।

यदि हम किसीको पीड़ित देखें और यह अनुभव करें कि यही पीड़ा यदि हमें होती तो हमें कैसा कष्ट होता? हमारा हृदय करुण भावसे द्रवित हो जाय और हम चाहने लगें कि इसका कष्ट दूर हो जाय। इस करुण भावकी प्रवृत्तिका नाम 'दया' है। जीवका कल्याण करनेकी वृत्तिको भी दया कहते हैं। दया धर्मका मूल है। जिसको जीवमात्रके प्रति दया और प्रेम है, उसने अपने धर्मको जाना है, ईश्वरको पहचाना है, वह परम भक्त है, वह जगद्गुरु है। ईश्वरसे दया ही नहीं, सब कुछ पानेका अधिकारी है। दयावान्का ध्येय यही होता है—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

'न तो हमें राज्यकी कामना है, न स्वर्गकी और न मोक्षकी। मैं केवल दुःखसे पीड़ित प्राणियोंके कष्ट-विनाशकी ही कामना करता हूँ।'

इसीसे दयाका आधार लेकर ईश्वरके जितने नाम बने हैं—चाहे वे हिंदू-धर्मके हों चाहे इस्लाम अथवा ईसाई-धर्मके हों—उतने और किसी गुणके आधारपर नहीं बने।

ब्रह्माने प्राणिमात्रके कल्याणके लिये एक अक्षर दिया था—'द'; जिसका अर्थ है—दया, दान, दमन। इन तीनोंसे ही मनुष्य कितना महान् बना है।

तन, मन, धनसे आर्तजनोंके लिये उपयोगी होना, जो कुछ अपने पास है उसे यथाशक्ति उनकी सेवा और परमार्थमें लगा देना, 'दान' कहलाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसको समाजका ही बनकर रहना पड़ता है। उसे जो कुछ भी प्राप्त है, उसकी जो कुछ भी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, वह उसके अकेलेके प्रयत्नसे नहीं, सबके सहयोगसे है। ईश्वरने उसे आदान-प्रदानकी शक्ति दी है। मानव एक तो सदैव अपने व्यक्तिगत कार्योंमें व्यस्त रहता है, फिर उसे अपनी जीविका चलानेके लिये दूसरोंकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके प्रयत्नमें समय बिताना पड़ता है। उसे बदला चुकानेकी गरजसे ऐसा उपकार करना पड़ता है। यह तो साधारणतः मनुष्य-जीवनकी गति है; परंतु इस प्रकारका उपकार नीचे दर्जेका उपकार है। सच्चा उपकार तो वही है, जो निष्काम भावसे किया जाय। दानका यही भाव है। प्रेम, समता, सद्भावनाकी स्थापनाके लिये देनेसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। इसीसे श्रेष्ठ आत्माओंकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वे दूसरोंका हित अपने किसी लाभकी इच्छाके बिना ही किया करते हैं। महात्मा तुलसीदासजीने कहा है—

पर हित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

'परोपकारके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरेको दुःख देनेके समान कोई अधर्म नहीं है।'

प्रकृतिमें स्वयं भी ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं, जो स्वयंको मिटाकर दूसरोंके सुखको बढ़ाते हैं। उदाहरणके लिये देखिये—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

'नदियाँ स्वयं जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, बादल स्वयं धान्य नहीं खाते, हमारे लिये जल बरसाकर फसल उपजाते हैं। सज्जनोंकी विभूतियाँ परोपकारके लिये ही होती हैं।'

गेहूँको लीजिये—किसान गेहूँको दाँय-मींजकर अलग करता है। मनुष्य उसे पीसकर आटा बनाते हैं। इसके बाद उसे सानते हैं, गूँधते हैं और तब बेलते हैं। बेलनेके बाद तवापर गरम करते हैं। फिर आग या जलते कोयलेपर सेंकते हैं। इतना दुःख सहनेके बाद गेहूँ मनुष्यमात्रका पेट भरता है।

कपासको देखिये। कपास गरमी, सर्दी, वर्षा सहकर वनमें उत्पन्न होता है। सूखकर चर्खीमें औटा जाता है, धुना धुनता है, चर्खीमें सूत कतता है। कपड़ा बन धोबीके यहाँ कुटता, दर्जी टुकड़े-टुकड़े करता, सुइयोंसे शरीर छिदता—ऐसे दुःख उठाकर ही वह वस्त्ररूप हो मनुष्यके शरीरकी रक्षा करता है और छिद्रोंको छिपाता है।

बाँसुरीकी भी कसक-कहानी बहुत ही अनुपम है। बाँसकी पतली-सी नली अपना अङ्ग-अङ्ग कटवाकर, अपना सीना छिदवाकर, प्रभुके अधरोंपर जगह पाती है, संसारको मोहित करती है। एक कविने कितना सुन्दर वर्णन किया है कि राधा बाँसुरीसे उसका रहस्य पूछती है कि आखिर वह प्रभुको इतनी प्यारी क्यों है?—इसका उत्तर बाँसुरीसे सुनिये—

सजनी! जो कटा अंग अंग मेरा।
खिला कुछ और ही तब रंग मेरा॥
अंदरका पूरा बन्ध काट डाला।
तनको सुरोंके लिये छेद डाला॥
छेदोंसे मेरा सीना भरा है।
तुम देखो कैसा यह माजरा है॥
मैं कुछ न कहकर नित्य मौन रहती।
छेदोंसे प्रियकी मधु तान बहती॥
वे अपने मनसे गायें जो चाहें।
मुझे भले कोई कितना सराहें॥

दीपककी व्यथा भी यही है। दीपक स्वयं प्रकाश-स्वरूप होकर अपनी ही ज्वालामें जलकर सभीको विमल ज्योतिसे जगमगा देता है। एक कविने इस भावको कितने सुन्दर ढंगसे दर्शाया है—

जलाकर स्वयं को उजाला जुटाना।
मिटाना कठिन कालिमाएँ धरा की,
प्रदीपो! जगत सीखना चाहता है॥

इसके बाद मिट्टीको लीजिये—कुम्हार अपने पसंदकी मिट्टी खोद-खनकर एकत्र करता है, फिर उसे मर्दता और रौंदता है। मिट्टी तैयार हो जानेपर उसे चाकपर रखकर अपने इच्छानुसार विभिन्न प्रकारके मिट्टीके उपकरण तैयार करना प्रारम्भ करता है। इस क्रियामें वह एक सूतसे चाकपर रक्खी हुई वस्तुको काटता है। पुनः सूखनेको धूपमें रखता है। सूख जानेपर आँवा लगाकर आगमें पकाता है।

पक जानेपर इस तरह तैयार हुए बर्तन—मटका, गगरी या झज्झर मनुष्यमात्रके पानी पीने, सामान रखने आदि गृहस्थीके काममें आते हैं। ये बर्तन जितने अधिक पके होंगे, उतने ही अच्छे, मजबूत तथा पानीको ठंडा करनेवाले होंगे। इस प्रकार मिट्टी तरह-तरहके कष्ट उठानेके बाद तथा आगमें पकनेके बाद मानवमात्रके लिये उपयोगी बन पाती है।

बरसातमें पानीका बहाव सराहनीय है। जब भी थोड़ा-बहुत पानी इकट्ठा हुआ तो आगे बढ़ता है और गर्द-गुबारको ढकता है। गढ़ोंको भरता है, यहाँतक कि वह समाप्त हो जाता है और अपने अस्तित्वको खो देता है, पर भरसक अपने मार्गकी सफाई कर देता है। गढ़ोंको भर देता है। उसी तरह परोपकारी पुरुष जो जिस लायक है, जो जितना समर्थ है, दूसरेके उत्थानके लिये दूसरेकी कमी पूरा करनेके लिये लालायित रहता है।

मोती बेधे जानेपर ही आभूषणके लायक होते हैं, दूसरोंके शृङ्गारकी वस्तु बनते हैं। एक उर्दू कविने उनके आनन्दको यों दर्शाया है—

कोई उस चाँदसे माथे के टीकेंमें उछलता है।
कोई बुन्दोंसे मिलकर कानके नरमोंमें मलता है॥
लिपटकर धुकधुकीमें कोई सीनेपर मचलता है।
कोई झुमकोंमें झूले हैं कोई बालीमें हिलता है॥
यह कुछ लज्जत है, जब अपना छिदाते हैं जिगर मोती।

यही हाल मेहदीका है। वह पत्थरपर पिस जानेपर ही अपना रंग निखार पाती है और दूसरोंको सुन्दर बना पाती है तथा लालिमा देती है। सुरमा आँखोंमें लगाने लायक तभी बनता है, नैनोंको सुन्दरता तभी देता है तथा नेत्रोंको ज्योतिदायक तभी होता है, जब पत्थरपर खूब महीन पिस जाता है।

फूलोंकी सुगन्धको देखिये—फूल ऐसा पवित्र और कोमल निवासस्थान पाकर भी सुगन्ध उसमें रहना पसंद नहीं करती। वहाँसे निकलकर अपने वातावरणको यथाशक्ति सुगन्धित बनाकर ही रहती है। एक उर्दू कविने कहा है—

बुये गुल फूलोंमें रहती थी मगर रह न सकी
हम तो काँटोंमें रहे और परेशां न हुए।

क्षुद्र हृदयवाले अपने दुःखोंमें बिलबिलाते ही रहते वह तिसपर भी वातावरणको छोड़ नहीं सकते। श्रेष्ठ लोग दूसरोंके हितके लिये अपने आनन्दको भी त्यागकर उसे दूसरोंको बाँट देते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि 'परोपकारी लोग विश्वबन्धु होते हैं। उनकी दृष्टिमें यह अपना है, यह पराया है, ऐसा कुछ रहता ही नहीं—यह हिसाब तो क्षुद्र हृदयवालोंका है, जिनका दिल तंग है। जो उदार-हृदय पुरुष हैं, जिनका दिल बड़ा है, उनके लिये तो सारा संसार ही उनका कुटुम्ब है'—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

परमात्मा इन्हींकी आँखोंसे संसारको देखते हैं, इन्हींके हाथोंसे संसारका भला करते हैं। भगवान् अपने नियम कभी नहीं बदलते, पर ऐसे श्रेष्ठ जन चाहें तो उनका मन रखनेके लिये वे अपने नियमको भी बदल देते हैं। बिन्दु महाराजने कहा है—

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभुको नियम बदलते देखा।
इनका मान टले टल जाये, जनका मान न टलते देखा॥

ऐसे ही श्रेष्ठ लोगोंके लिये महात्मा तुलसीदासजीने भी कहा है—

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा॥

उदारचित्तके परहितमें अटूट बल है, उनके दानमें अथाह शक्ति है। उनको आदेश है—

दे दे! खुदा के नाम पे प्यारे ताकत गर है देने की दे दे।
जो चाहे सो माँग ले उससे, ताकत गर है लेने की ले ले॥

अपने लिये परमात्मासे कुछ माँगा जाय तो वह नहीं भी मिल सकता, पर यदि दूसरोंके लिये माँगा जाय तो वह तुरंत मिलता है। अपने लिये श्रेष्ठजन कुछ माँगते ही नहीं, मिले हुएमेंसे अपने लिये कुछ बचाते ही नहीं। एक हाथसे लेते हैं, दूसरे हाथसे दे देते हैं।

दुनिया न जान इसको मियाँ दरयाकी यह मझधार है।
औरोंका बेड़ा पार कर तेरा भी बेड़ा पार है॥

परोपकारके असंख्य रूप हो सकते हैं। जो भयभीत दशामें रहते हों, अन्याय सहते हों, पड़ोसियोंका बुरा बर्ताव सहते हों, आलस्यमें जीवन व्यतीत करते हों, अपने अज्ञानको हठसे दूर करनेका प्रयत्न न करते हों, जो घमंड

करते हों, जो दूसरोंसे ईर्ष्या करते हों—इन सबसे मनुष्यको बचाना भी परोपकार है।

धन्य हैं वे पुरुष, जो दूसरेकी व्यथाको समझकर सच्ची लगनसे उसको मिटानेकी चेष्टा करते हैं। दूसरेकी व्यथाको अपनी व्यथा समझते हैं, निष्काम भावसे अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं।

हमारे राजा रन्तिदेव श्रीमद्भागवत ९। २१। १२ में कहते हैं—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

'मैं भगवान्से आठों सिद्धियोंसे युक्त परम गति नहीं चाहता, न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त दुखी प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे किसी प्राणीको दुःख न हो।'

एक उर्दू कविने कितने सुन्दर शब्दोंमें व्यक्त किया है—

बलायें लूँ मैं उस दिल की जो दुनियाके लिये रो दे।
जहाँवालोंके रंजोगमको अपने खूनसे धो दे॥
जलाकर आशियाँ अपना, बसाकर गैर की महफिल।
किसीके सोज़े गमसे अपने सोजे दिलको भी धो दे॥
मेरी आँखोंमें उसकी आँख ही इज्जतके काबिल है।
जो आँसू बनके बह जाये, खुदीको खुदमें ही खो दे॥

क्या हिंदू होना पाप है ?

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

भूमण्डलपर हजारों जातियाँ एवं सैकड़ों राष्ट्र हैं, किंतु हिंदू-जाति-जैसी विलक्षण जाति तथा हिंदूराष्ट्र—हिंदुस्थान जैसा देश दूसरा नहीं है। इस महान् हिंदूधर्म एवं हिंदूराष्ट्रमें कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, ऐसे मौलिक गुण हैं, जिन्होंने इन्हें चिरन्तन और चिरंजीवी बना दिया है। सृष्टिके अरबों वर्षोंके जीवनमें अनेकों जातियाँ उठीं, बिजलीकी चञ्चल रेखाकी तरह विश्व-नभमें चमकीं और विलीन हो गयीं। अनेकों राष्ट्र जन्मे और मरे; आज उनके नाम भी इतिहासज्ञोंके लिये अन्वेषणकी सामग्री बन गये हैं। परंतु इस गौरवमयी हिंदूजातिने आजसे सुदीर्घकाल पूर्व अपने जिस अस्तित्वको प्रारम्भ किया था, वह आज भी तथैव विद्यमान है। अपने दीर्घजीवनमें इसे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, अनेकों आँधियाँ आयीं, तूफान आये, किंतु हिमालयकी चट्टानोंकी तरह यह महान् जाति अचल रही।

आज भारत स्वाधीन है। पराधीनताकी जो कालिमा पिछले सात सौ वर्षोंसे हिंदूजाति और हिंदुस्थानपर छायी हुई थी, आज सर्वथा धुल गयी है। परंतु आश्चर्य ! इस स्वतन्त्रताके साथ ही हिंदूका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया है। आज हिंदूको 'साम्प्रदायिक' समझा जाता है और अपने ही राष्ट्रमें उसे विदेशियोंकी तरह समझा जाने लगा है। आज हिंदू-विरोधी तत्त्व संगठित होकर हिंदूजाति, हिंदूधर्म एवं हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिपर प्रबल प्रहार करके भारतको हिंदू-विहीन कर डालनेके लिये प्रयत्नशील हैं। हिंदुओंके देशमें ही हिंदुत्वको जड़-मूलसे मिटा डालनेके प्रयास जारी हैं। कांग्रेसकी मुस्लिमपोषक नीति एवं कम्युनिस्टोंकी हिंदू-विरोधी नीतिने संगठित होकर हिंदू-विरोधी मोर्चा लगा लिया है।

कुछ व्यक्तियोंको 'हिंदू' शब्दसे साम्प्रदायिकताकी गन्ध आती है तो कुछ 'हिंदू' शब्दको विदेशियोंकी दी हुई गाली बताकर तथा उसके निन्दनीय अर्थ करके उसे त्याज्य बताते हैं। कुछ संस्थाओं और नेताओंको 'हिंदू' शब्द छोड़कर 'भारतीय' शब्द अपनानेकी धुन सवार है, तो कुछ 'हिंदू' शब्दके अर्थके अनर्थ करनेपर तुले हुए हैं। उनकी दृष्टिमें काफिरको लूटने, उसकी स्त्रियोंका अपहरण करने तथा मूर्तिभंजन करनेकी प्रेरणा देनेवाले मजहबको माननेवाले भी हिंदू ही हैं।

आज हिंदूजाति और महान् हिंदूधर्मपर महान् संकट है, ऐसे समयमें हम उस संकटसे तभी उबर सकते हैं, जब कि हम 'हिंदू' शब्दपर गर्व कर उसके महान् अर्थको समझें तथा 'हिंदू'के विरुद्ध किये जा रहे दुष्प्रचारमें न आकर गौरवके साथ अपनेको 'हिंदू' कहें। हमारे देशके चप्पे-चप्पे-

पर हिंदू-संस्कृतिके चिह्न अङ्कित हैं, अतः वह स्वाभाविक रूपसे 'हिंदूराष्ट्र' है ।

'हिंदू'का गौरव अतीत

आदिसृष्टि भारत और उसके भी कुरुक्षेत्र नामक स्थानान्तर्वर्ती ब्रह्मावर्त नामक स्थानमें हुई थी । सृष्टिके बाद उन पूर्व पुरुषाओंकी एक शाखा भारतके पञ्चनद देशोंको लाँघती हुई सिन्धु नदको पार करके यूनान, मिश्र, रोम और उससे आगे अमेरिका महाद्वीपतक जा पहुँची । इस विजय-प्रस्थानके मुँह बोलते प्रमाण 'मोहन-जो-दड़ो', माडी इन्डस, आर्यस्थान (ईरान), अदनसे लेकर सुदूर अर्जुनस्थान (अरजन्टाइना) तक फैले हुए हैं । आज भी अमेरिकाके मूल निवासी 'रेड इंडियन' नामसे ही विख्यात हैं । अतः यह स्पष्ट है कि इस शाखाके पुरुष अपनी सभ्यता और संस्कृतिके साथ अपना नाम भी अपने साथ लेते गये थे, जो आगे चलकर सिन्धु, हिंदु, हिंद, इंदु, इण्डो और इंडियन आदिके रूपमें उच्चारण-भेदसे अनेक रूपोंमें प्रचलित हुआ ।

जैसे सब भाषाओंका उद्‌गम-स्थान भारती देववाणी (संस्कृत) है, ठीक इसी प्रकार विभिन्न विद्याओंका आदिम आविष्कारक भी हिंदुस्थान ही है । इसीलिये आज भी ईराक, ईरान, फारस, सुदूर टर्कीतकके सभी लोग अङ्कों-को 'हिंदसे' और गणित विद्याको 'इल्मे हिंदसा' कहते हैं, जिसका तात्पर्य हिंदसे आनेवाली विद्या या 'हिंदुस्थानकी विद्या' कहा जा सकता है ।

तन्त्र-पुराण-साहित्यमें 'हिंदू' शब्द

तन्त्र-ग्रन्थों और पुराणोंमें तो 'हकारोपलक्षित' हिंदूशब्द भी अनेक स्थलोंमें विद्यमान है । यथा—

(क) हिंदूधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः ।
हीनं च दूषयत्येव स हिंदुरुच्यते प्रिये ॥

(मेरुतन्त्रप्रकाश २२)

(ख) अवनी यवनैः क्रान्ता हिंदवो विन्ध्यमाविशन् ।

(कालिकापुराण)

(ग) हिमालयं समारभ्य यावदिन्दुसरोवरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्षते ॥

(बार्हस्पत्य शास्त्र)

(घ) ....सप्तसिन्धुस्तथैव च ।
हफ्त हिंदुर्यावनी च.................. ॥

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग ५ । ३६)

(ङ) हिनस्ति तपसा पापान् दैहिकान् दुष्टमानसान् ।
हेतिभिः शत्रुवर्गांश्च स हिंदुरभिधीयते ॥

(पारिजातहरण नाटक)

अर्थात्—(क) कलिकालमें हिंदूधर्मका लोप करने-वाले चक्रवर्ती हो जायँगे । (शिव कहते हैं—हे पार्वती !) हीनको दूषित करनेवाला 'हिंदू' कहा जाता है । (ख) पृथ्वी, यवन-म्लेच्छप्राय लोगोंसे भर जायगी । हिंदू (अपनी संस्कृतिको बचानेके लिये) विन्ध्याचलमें (तत्रस्थ दुर्गा भगवतीकी शरणमें) जायँगे । (ग) हिमालय पर्वतके 'हि' शब्दोपलक्षित उत्तरीय उपत्यकासे लेकर इन्दुसरोवर-(कन्याकुमारी) के 'दु' शब्दोपलक्षित दक्षिणी समुद्रके पुलिनतक विस्तृत देवनिर्मित देशका नाम 'हि-न्दु-स्थान' कहा जाता है । (घ) वेदोक्त सकारोपलक्षित 'सप्तसिन्धु' शब्दका यूनान आदि देशमें हकारोपलक्षित अपररूप 'हफ्त' 'हिन्दु' प्रचरित होगा । (ङ) जो अपने दैहिक और मानसिक पापोंका तपश्चर्याद्वारा विनाश करे और शस्त्रास्त्रसे शत्रुसमूहका सर्वनाश करे वह 'हिंदू' कहा जाता है ।

प्रकृतमें तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त संक्षिप्तीकरणकी रीतिके अनुसार बार्हस्पत्य शास्त्रोक्त उपर्युक्त (ग) प्रमाणमें भौगोलिक रीतिसे हिमालयसे कन्याकुमारीतकके भू-भागको आद्य और अन्त्य अक्षरोंके अनुसार संक्षेपमें 'हिंदुस्थान' बताया गया है । यदि पंजाबनिवासी पंजाबी और बंगाल-निवासी बंगाली हो सकता है तो 'हिंदुस्थान'का मूल निवासी भी सुतरां 'हिंदू' ही कहा जा सकता है । आज भी विदेशोंमें भारतको 'हिंद' या 'एच'को साइलेन्ट करके 'हिंदिया'के स्थानमें 'इन्दिया' अथवा 'इन्डिया' कहा जाता है और यहाँके निवासीको हिंदी या 'इण्डियन' पुकारा जाता है—फिर चाहे वह मुसल्मान किंवा ईसाई आदि किसी मतमें विश्वास रखनेवाला क्यों न हो ।

प्राचीन कोषोंमें 'हिंदू' शब्द

प्राचीन कोष-ग्रन्थोंमें 'हिंदू' शब्दके विभिन्न अर्थ किये गये हैं । यह सभी अर्थ हिंदूजातिमें सांस्कृतिक गुणोंके रूपमें सर्वथा संघटित होते हैं । यथा—

(क) हिन्दुर्दुष्टनृहा प्रोक्तोऽनार्यनीतिविदूषकः।
सद्धर्मपालको विद्वान् श्रौतधर्मपरायणः॥
(रामकोश)

(ख) हीनं दूषयति इति हिन्दुः, जातिविशेषः।
(शब्दकल्पद्रुम)

(ग) हिन्दुर्हिन्दूश्च संसिद्धौ दुष्टानां च विघर्षणे।
(अद्भुत कोश)

(घ) हिन्दुर्हिन्दुश्च हिन्दवः। (मेदिनी कोश)

अर्थात् (क) दुष्ट नरको हनन—दण्ड देनेवाला, अनार्य नीतिका विदूषक, सद्धर्मपालक विद्वान् और वैदिक धर्मपरायण व्यक्ति 'हिंदू' कहा जाता है। (जैसे संस्कृतमें 'हिंस' शब्दके वर्ण-व्यत्ययसे 'सिंह' बन जाता है। इसी प्रकार 'दुष्ट-हिंसक' शब्दोंके पहिले अक्षरोंके विपर्ययसे 'हिंदू' शब्द बनता है।) (ख) हीन=धर्मभ्रष्ट पतितको दूषित=जाति भ्रष्ट करनेवालेको 'हिंदू' कहते हैं। (यहाँ भी हीन-दूषक शब्दोंके प्रथमाक्षरोंके संयोगसे हिंदू शब्द बन जाता है।) (ग) दुष्टोंका दमन करनेवाला व्यक्ति 'हिंदू' कहा जाता है। (घ) हिंदुः, हिंदू और हिंदवः—तीनों एकार्थक हैं। अन्यान्य सभी कोशोंमें 'हिंदू' शब्दके उपर्युक्त अर्थ ही लिखे हैं।

अन्वर्थनामा 'हिंदू'

'हिंदू' शब्दके अर्थोंमें तीन विभिन्न विशेषताएँ प्रकट की गयी हैं—(१) दुष्टोंका दमन करनेवाला, (२) धर्मभ्रष्टोंको जातिच्युत करनेवाला, (३) हिंसासे दूर रहनेवाला। ये तीनों विशेषताएँ ही हिंदू-संस्कृतिकी अन्यतम प्रतीक हैं, जो प्राचीन हिंदूधर्मके परम्परागत उत्तराधिकारी सनातनधर्मियोंमें अद्यावधि अक्षुण्णरूपेण विद्यमान हैं।

दुष्टोंके दमनकी अनेक गाथाएँ हिंदू-ग्रन्थोंमें भरी पड़ी हैं। हिंदू-संस्कृतिके विनाशक अभारतीय रावणके अत्याचारोंका लेखा चुकानेके लिये भगवान् रामने समुद्र बाँधकर सोनेकी लंकाको धूलमें मिला दिया। मनुष्योंकी कौन कहे, भारतके गीध, वानर और भालू भी एक अबला (सीतापर) किये गये अत्याचारोंको सहन न कर सके और अपने प्राणोंपर खेल गये। यह सब केवल इतिहासकी कथामात्र बनकर नहीं रह गयी, किंतु अब भी प्रतिवर्ष भारतके छोटे-बड़े प्रत्येक नगर, गाँवमें रामलीलाके रूपमें दुष्ट-दमनकी गाथा भूयोभूयः पुनरावृत्ति की जाती है। अन्यून नौ लाख वर्ष पूर्व मारे गये एक सांस्कृतिक शत्रुका आज भी तथैव मुर्दा जलील किया जाता है।

अमृतसरके जलियाँवाले बागके बर्बरतापूर्ण हत्याकाण्डके जिम्मेवार मिस्टर डायरको हिंदू वीर उधमसिंह सुदूर विलायततक पहुँचकर भी गोलीके घाट उतार देनेके अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होता। वीर मदनलाल ढींगराने लन्दनमें कर्जन वायलीकी हत्या कर देशके अपमानका प्रतिशोध लिया। सत्रह बार पराजित हो शरणमें आये शहाबुद्दीन गोरीको छोड़ देनेवाला पृथ्वीराज चौहान दुर्भाग्यवश गोरीके हाथों पड़ जानेपर और दोनों आँखें निकाल दिये जानेपर भी चन्द कविके—

चार बाँस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुलतान है, अब मत चूके चौहान॥

—इस पथसे संकेत पाकर शब्दवेधी बाणद्वारा अपने कृतघ्न और कायर शत्रु गोरीको समाप्त कर डालता है। दुष्टदमनकी यह घोर प्रवृत्ति हिंदूकी परम्परा-प्राप्त बपौती है जो सांकर्यरहित हिंदुओंमें अधिकांशरूपेण और रक्त-सम्बन्धसे हिंदुओंकी निकटवर्तिनी अफगानिस्तानकी पठान जातिमें तथा जर्मनीके कुछ कुटुम्बोंमें भी पायी जाती है।

दूसरी विशेषता है—हीन धर्मभ्रष्टको दूषित, जातिच्युत कर देनेकी व्यवस्था। विश्वामित्रने अपने गोभक्षक पुत्रोंको शिखासूत्र-विहीन, मुण्डितमस्तक और लम्बकूर्च बनाकर देशनिकाला दे दिया था। महाराज अंशुमान्‌ने प्रजापीडक अपने पुत्र असमंजसका त्याग करते जरा भी आनाकानी नहीं की। प्रह्लादने पिताका, भरतने माता कैकेयीका, विभीषणने भ्राता रावणका—केवल विचार-वैषम्यके कारण सर्वथा बहिष्कार कर दिया था। बालहत्याके अपराधी अश्वत्थामाको—गुरुपुत्र होनेपर भी सर्वस्व हरण करके निर्वासित कर दिया गया था। अब भी तादृश अपराध करनेपर बहिष्कारका महास्त्र बराबर छोड़ा जाता है।

हिंसासे दूर रहना

मन, कर्म, वचनसे किसी भी प्राणीको कष्ट न पहुँचाना यह विशेषता भी एकमात्र हिंदू-जातिमें ही उपलब्ध हो सकती है। इस्लाम तलवारसे पनपा है। चंगेज, तैमूर और नादिर-जैसे कत्लआमके बदनाम हामी इस्लामकी सायामें

ही पले थे। इसलिये इस्लाममें दया ढूँढ़ना अरबके रेगिस्तानमें पवित्रतोया गङ्गाको ढूँढ़नेके बराबर है। ईसाका पर्वतकी चोटीपरसे दिया हुआ उपदेश अब केवल अंजील-के पन्नोंकी शोभा बढ़ानेकी चीज मात्र रह गया है और सर्वभक्षी कथित बौद्धोंका अहिंसावाद भी अब केवल स्व० राहुल सांकृत्यायनजीकी लेखनीकी नोकमें ही रौनक-अफरीज हैं। इसलिये आज भी यदि, अदृश्य जीवोंको अपने तीव्र श्वाससे भी वेदना न पहुँचे—इस विचारसे मुँहपर पट्टी बाँधनेवाले अतिकारियोंसे लेकर भावी विश्वयुद्धकी विभीषिकाओंकी रोक-थामके लिये प्राणपणसे रचनात्मक कार्यमें जुटे राजनीतिक नेताओंतकको आदर्श अहिंसावादीके रूपमें देखना हो तो वे एकमात्र भारतमें हिंदू-परम्पराके उत्तराधिकारियोंमें ही देखे जा सकते हैं।

हिंदू और अहिंदू भेदके आधार

एक समय था, जब विश्वके समस्त मनुष्य एक ही संस्कृतिके पुजारी होनेके कारण सभी 'हिंदू' कहे जाते थे; परंतु महाभारतके विश्वव्यापी महासंहारके पश्चात् सभी दिशाओंमें विशृङ्खलता फैल जानेके कारण मनूक्त 'ब्राह्मणा-नामदर्शनात्' हेतुसे अनेक मत-मतान्तरोंका प्रादुर्भाव होने लगा। आरम्भमें चाहे तत्तन्मतोंकी मूल भित्ति वैदिक आदर्शोंपर स्थिर की गयी थी, परंतु समय बीतनेके साथ उन नये मतोंमें पुरानी परम्पराओंका ह्रास और अनेक विकृत विचारोंका बाहुल्य स्वाभाविक था। अतः अन्तमें—

रफ्ते रफ्ते जिस्मो जांमें बरहमी जब हो गई।
खत्म इक दास्ताने जिन्दगी तब हो गई॥

—के अनुसार आचार-विचारोंके भेदकी दरार इतनी चौड़ी हो गयी कि अभारतीय देशोंके लोगोंको हिंदूके रूपमें पहचानना भी कठिन हो गया। पण्डितजी शौचके लोटेको सात बार मिट्टीसे मलनेपर भी शुद्ध न माननेके अपने पुराने संस्कारोंको छोड़नेको तैयार न हुए तो मुल्लाजी मिट्टीके बँधनेमें आबदस्तसे बचे पानीसे ही वजू करके अपनी नमाज अदायगीकी आदतको आरामदेह समझने लगे। आखिर समझौता कैसे हो?

न्यूनाधिक सभी अवैदिक मतोंमें ऐसी ही धाँधली मची हुई है। इसलिये अब यह आवश्यक हो गया है कि प्राचीन हिंदू-संस्कृतिके प्रतीकभूत मानव-समूहकी एक ऐसी परिभाषा निश्चित हो जानी चाहिये जो कि व्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव—इन दोषत्रयोंसे अपरिमृष्ट एवं हिंदू-संस्कृतिके मूल आधारोंको अधिक-से-अधिक व्यक्त कर सकनेमें समर्थ हो। इसी पुनीत आशयसे प्रेरित होकर भारतके कुछ ख्यातनामा महानुभावोंने तादृश प्रयत्न किये हैं। उनमेंसे कौन महानुभाव किस सीमातक अपने प्रयत्नमें सफल हो पाये हैं—यह तो तुलनात्मक विश्लेषणसे अनुपद विज्ञ पाठक निर्णय करेंगे, परंतु मार्गदर्शक होनेके नाते वे सभी स्तुत्य हैं, यह हमारी दृढ़ धारणा है।

लोकमान्य तिलककृत हिंदूकी परिभाषा

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु नियमानामनेकता।
उपास्यानामनियमो हिन्दुधर्मस्य लक्षणम्॥

अर्थात् 'वेदोंमें प्रामाण्यबुद्धि रखना, तत्तत् साम्प्रदायिक विभिन्न नियमोंकी पालना करना और (मनोवैज्ञानिक रीतिसे आस्थानुरूप) अनेक उपास्य देवताओंमेंसे किसी एकमें अनन्य भक्ति रखना—यह हिंदूधर्मका लक्षण है।'

वीर सावरकरकृत हिंदूकी परिभाषा

आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतिः॥

अर्थात्—'पूर्वी समुद्रसे पश्चिमी समुद्रपर्यन्त भारत-भूमि जिस व्यक्तिकी पितृभू और पुण्यभूमि हो, वह 'हिंदू' कहा जाता है।'

हिंदूकी हमारी परिभाषा

प्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' गोरखपुरके 'हिंदू-संस्कृति अङ्क' में हमने 'हिंदू कौन!' शीर्षक एक लेख लिखा था, जिसमें हिंदूकी परिभाषा निम्नलिखित व्यक्त की थी। अनेक विद्वानोंने उसे बहुत पसंद किया। खासकर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने तो उक्त अङ्कमें ही हमारी इस परिभाषाको अपनाकर इसे गौरवान्वित कर दिया। इसलिये उसे यदि सर्वथा नहीं तो आजतककी दूसरे मान्य महानुभावोंद्वारा निश्चित की गयी परिभाषाओंकी अपेक्षा अदुष्ट अवश्य कहा जा सकता है। वह इस प्रकार है—

ओंकारमूलमन्त्राढ्यः पुनर्जन्मदृढाशयः।
गोभक्तो भारतगुरुर्हिन्दुर्हिंसनदूषकः॥

अर्थात् (१) ओंकार जिसका मूलमन्त्र हो, (२) पुनर्जन्म-

में दृढ विश्वास रखता हो, (३) गायको पूज्य मानता हो, (४) भारत जिसका गुरु-घर हो और (५) धर्मभ्रष्टों एवं राष्ट्रद्रोहियोंको जातिच्युत करनेवाला हो, वह व्यक्ति 'हिंदू' कहा जाने योग्य है।

उपर्युक्त लक्षणके अनुसार सनातनी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध—हिंदूधर्मकी ये पाँचों प्रधान शाखाएँ अपने अवान्तर भेदोंसहित हिंदू सिद्ध हो जाती हैं; क्योंकि हिंदुत्वकी उपर्युक्त पाँचों विशेषताएँ समान आचार-विचारवाली उक्त पाँचों शाखाओंमें निर्बाधरूपसे पायी जाती हैं। अतः यह लक्षण उन सबमें सुतरां व्याप्त है।

साथ ही अनभीष्ट विषम आचार-विचारसम्पन्न ईसाई, मुसल्मान, यहूदी और पारसी आदि अवैदिक—हिंदुत्वसे सर्वथा दूर—अन्यान्य शाखाओंमें यह लक्षण अतिव्याप्त भी नहीं होता; क्योंकि उनमें लक्षणोक्त एक भी विशेषता नहीं दीख पड़ती—यह बात नीचेके प्रघट्टसे सुस्पष्ट हो जायगी।

पाँचों ही हिंदू क्यों !

हमारी पूर्वोक्त हिंदू-परिभाषामें जिन पाँच विशेषताओं-का उल्लेख किया गया है, वे सब सनातनी आदि पाँचों शाखाओंमें किस प्रकार उपलब्ध होती हैं, यह सप्रमाण और लक्षण-समन्वयपूर्वक नीचे अङ्कित किया जाता है।

पाँचोंका मूलमन्त्र ओंकार

सनातनधर्मी—संध्या-वन्दन, वेदपाठ आदि सभी कृत्योंमें सर्वप्रथम ओंकारका प्रयोग करते हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—सभी सम्प्रदायोंके मूलमन्त्र प्रणवसंघटित ही पढ़े जाते हैं। सनातनियोंके धार्मिक ग्रन्थ वेदादि सभी शास्त्रोंमें ओंकारकी महिमा सर्वोपरि है। यथा—

(क) **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति···ओमित्येतत्।**
(कठ० १।१५)

(ख) **ओमित्येतत्···सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।**
(माण्डूक्य० १)

(ग) **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।** (गीता ८।१३)

अर्थात् (क) समस्त वेद जिस पदका वर्णन करते हैं वह ओम् है। (ख) ओम् इस एक अक्षरका ही सब वैदिक वाङ्मय व्याख्यान है। (ग) ओम् यह एक अक्षर साक्षात् ब्रह्म है।

इस प्रकार सनातनी हिंदू अपने जीवनकालिक समस्त धार्मिक अनुष्ठानोंके प्रयोगमें जहाँ प्रणव-मन्त्र ओंकारका प्रयोग अनिवार्य मानता है, वहाँ मृत्युके समय भी भगवद्गीताके आदेशानुसार ओम्का जप करता हुआ ही महाप्रस्थान करता है।

आर्यसमाजी—तो ओंकारके इतने बड़े भक्त हैं कि वे 'सत्यार्थप्रकाश' के लेखानुसार इसे परमात्माका खास नाम मानते हैं, इसे अपने धार्मिक ध्वजोंमें अङ्कित करते हैं।

सिक्ख—'ग्रन्थ-साहिब' के मङ्गलाचरण—'इक ओंकार सिरी सतगुर परसादी' बोलकर ही शब्दवाणी आरम्भ करते हैं। झण्डा-साहिबमें और यत्र-तत्र सर्वत्र भी गुरुमुखी भाषामें ओम् अङ्कित करना परमावश्यक मानते हैं।

जैनी—सज्जन भी अपने धर्मके मूलमन्त्र—**'नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणम्'** को प्रणवोच्चारणपूर्वक पढ़ते हैं।

बौद्ध—लोगोंका मूल मन्त्र भी प्रणवसंघटित—**'ओंमणिपद्मे हुम्'** प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हिंदू-धर्मकी इन पाँचों विशिष्ट शाखाओंमें ओंकारका समान आदर है। उक्त शाखाओंके आभ्यन्तरिक भेदों और उपभेदोंमें भी यह तथैव समादृत हुआ है।

पाँचोंका पुनर्जन्ममें विश्वास

पाँचों शाखाओंमें पुनर्जन्मका सिद्धान्त समान रूपसे समादृत है। यथा—

(क) **बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।**
(भगवद्गीता)

(ख) जब शरीर छोड़ता है तब···परमेश्वर पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है।···दूसरे शरीरमें ईश्वरकी प्रेरणासे प्रविष्ट होता है।
(आर्यसमाजी ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' पृष्ठ २६)

(ग) हेमकूट पर्वत है जहाँ, जहाँ पाण्डव जोग कमाया। कलिमें कठिन तपस्या साधी, महाकाल कालिका अराधी।

(श्रीगुरु गोविंदसिंहद्वारा स्वपूर्वजन्म-कथन-सिक्ख ग्रन्थ 'विचित्र नाटक')

(घ) सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणन्ता अदेइ मरणाई।
तो बरि सप्पं गहियुं मा कुगुरु सेवणं भद्दम्॥

(जैन-ग्रन्थ 'प्रकरण-रत्नाकर' भाग २ सूत्र ३७)

(ङ) रागादिज्ञानसंतानवासनाच्छेदसम्भवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता॥

(बौद्धग्रन्थ—'विवेक-विलास' १०)

अर्थात्—(क) अर्जुनके प्रति श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! मेरे और तेरे अनेक जन्म व्यतीत हो चुके हैं। (ख) आर्यसमाजप्रवर्तक स्वामी दयानन्दोक्त भाषा स्पष्ट है। (ग) गुरुवाणी स्पष्ट है। (घ) सर्पके डँसनेसे एक बार ही मृत्यु होती है, परंतु खोटे गुरुके कुसंगसे बार-बार जन्मना और मरना पड़ता है। इसलिये सर्पका काटना अच्छा, परंतु खोटे गुरुकी सेवा करनी अच्छी नहीं। यह जैन मत स्पष्ट है। (ङ) राग-द्वेष आदिकी परम्पराका और वासनाका नाश हो जाना ही चारों बौद्धोंकी अभिमत मुक्ति है। (जबतक वासना बनी रहेगी तबतक जन्म-मरण—पुनर्जन्म-मरण अनिवार्य है—यह बौद्धमत स्पष्ट है।)

पाँचों ही समान गोभक्त

पाँचों शाखाएँ गायको माता मानती हैं। सनातनधर्मियोंका कोई कृत्य गोपूजन, गोदान और पञ्चगव्यके बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। आर्यसमाजप्रवर्तक स्वामी दयानन्दने गो-महिमा प्रकट करनेके लिये 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तक लिखी थी। सिक्ख-सम्प्रदायका तो जन्म ही गोघातको दूर करनेके लिये हुआ था। यह बात दशम ग्रन्थ (विचित्र नाटक) में श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने अपनी कवितामें प्रकट की है, यथा—

यही देउ आज्ञा तुरक को खपाऊँ। गोघात का पाप जगसे मिटाऊँ॥

जैनाचार्योंने सम्राट् अकबरके समयमें गोरक्षाके लिये अविस्मरणीय प्रयत्न किये थे, जिनके प्रभावसे म्लेच्छ-राज्यकालमें भी गोरक्षणकी ऐसी गहरी नींव पड़ी थी, जो कि मुगलवंशके अन्तिम शासक बहादुरशाहके राज्य-कालतक भी अक्षुण्ण बनी रही।

अब बौद्धोंका रूप चाहे कितना ही विकृत क्यों न हो गया हो, परंतु आरम्भमें गौतम बुद्धने जीवहिंसाकी रोक-थामकी दृढ़शिलापर ही अपने मतकी गगनचुम्बिनी-अट्टालिका खड़ी की थी।

अंग्रेजी शासनमें सन् १८५७ का प्रसिद्ध विद्रोह गोचर्बीनिर्मित कारतूसोंके कारण ही हुआ था। पंजाबके कूका-विद्रोहका मूल कारण भी गोहत्या-निरोध था, जिसमें अन्यून तीन सौ गोभक्त व्यक्ति तोपदम कर दिये गये थे। आज भी गायके नामपर सच्चा हिंदू प्राण न्योछावर करता हुआ आनाकानी नहीं करता।

पाँचोंके मत-प्रवर्तक—भारतीय

सनातनधर्मी सिद्धान्तोंके मूल ग्रन्थ अपौरुषेय वेदोंके द्रष्टा, स्मर्ता, व्याख्याता और अनुष्ठाता सभी भारतकी विभूति हुए हैं। आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके पट्टशिष्य श्रीमुन्शीराम (पश्चात् स्वा० श्रद्धानन्द), श्रीलेखराम, श्रीगुरुदत्त आदि सभी सज्जन निर्विशेष भारतीय ही थे। सिक्खोंके दशों गुरु भारतीय थे। जैनियोंके महापुरुष श्रीऋषभदेवसे लेकर महावीरपर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर भारतीय ही हुए हैं। बौद्ध-धर्मके मूल प्रवर्तक श्रीगौतम बुद्ध और उसे विदेशोंमें प्रचारित करनेवाली सम्राट् अशोककी राजकुमारी संघमित्रा—दोनों भारतीय ही थे। इस तरह उक्त पाँचों शाखाओंके आदिम पुरुष सब भारतीय ही हुए हैं। उनके जन्म-स्थान, लीला-स्थान और निर्वाण-स्थान आज भी तीर्थोंके रूपमें भारतमें ही विद्यमान हैं। चीन, जापान, कोरिया, बर्मा और तिब्बत आदि स्थानोंके बौद्ध, गुरुगृहकी पुनीत यात्रा करनेके निमित्त आज भी भारतमें ही आते हैं। सभीकी पुण्यभूमि भारत है, मक्का-मदीना या अन्य स्थान नहीं।

क्या हिंदू नाम अपमानार्थ विदेशियोंकी देन है!

कहा जाता है कि जैसे अपनी हुकूमतके जमानेमें शासनमदोन्मत्त अंग्रेज हिंदुस्थान-निवासियोंको अपमानित करनेके लिये 'डेम'—'काला आदमी' कहता था, इसी तरह घमंडी मुसल्मान अपने शासनकालमें प्रजाको अपमानपूर्वक 'काफिर' और इन्हीं अर्थोंमें 'हिंदू' कहा करता था। अंग्रेजोंकी दी हुई अपमानजनक 'काला

आदमी' उपाधि तो हमने नहीं अपनायी, परंतु दुर्भाग्यवश मुसल्मानोंका दिया अपमानमूलक 'हिंदू' शब्द हमारे देशमें प्रचलित हो गया।

किसी विदेशीने अपमानार्थ हमें 'हिंदू' कहा हो यह भी सोलहों आने मिथ्या है; क्योंकि विदेशियोंकी कई पुस्तकोंमें भी हमें सम्मानसूचक 'हिंदू' नामसे और हमारे देशको 'हिन्द' नामसे स्मरण किया गया है। जैसा कि ईरान देशके पारसी-सम्प्रदायके मान्य ग्रन्थ 'शातीर'में लिखा है कि ईरानके गस्ताशप नामक बादशाहने अपने गुरु 'जरदुस्त' के साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये भारतसे व्यास नामक एक ब्राह्मणको बुलाया था। वह बड़ा दाना और अक्लमन्द था। यथा—

'अकनु बिरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमद।
दाना कि अकल चुनानेस्त।'

उपर्युक्त प्रमाणमें भारत देशका 'हिन्द' नामसे उल्लेख है और तत्कालीन व्यासकी बुद्धिमत्ताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। इसी पुस्तककी १६३ वीं आयतमें आगे लिखा है कि—

चूँ व्यास हिन्दी बल्ख आमद। गस्ताशप जरतस्त रख ख्वान्द॥

अर्थात् जब व्यास हिन्दु, बल्ख नामक राजधानीमें पहुँचा तो ईरानके तत्कालीन राजा 'गस्ताशप' ने अपने प्रधान पण्डित जरदस्तको बुलाया। व्यासजीने अभिमानपूर्वक कहा कि—

'मन मरदे अम हिन्दी निजाद।'

अर्थात् मैं हिन्द देशमें उत्पन्न होनेवाला एक हिंदू हूँ। इस तरह अन्तमें व्यासजी जरदुस्तको हराकर—

'ब हिन्द बाज गस्त'

अर्थात् फिर हिंदुस्तानको लौट गये। इसलिये हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि किसी भी विदेशी ग्रन्थमें अपमानसूचक अर्थोंमें 'हिंदु' शब्दका प्रयोग उपलब्ध नहीं होता, बल्कि यूनान, चीन आदि देशोंसे आनेवाले प्रसिद्ध यात्रियोंने अपने-अपने यात्रा-वृत्तान्तोंमें हमें सम्मानसूचक 'हिंदू' नामसे स्मरण किया है। यथा—चीनी यात्री 'ह्वेनसांग'ने भारत-भ्रमण करके अपने यात्रा-वृत्तान्तकी भूमिकामें संस्कृत शब्द 'इन्दु'—जिसका चीनी रूपान्तर 'इन्तु' है—चाँदके समान सुन्दर होनेके कारण भारतका नाम 'हिंदुस्थान' स्वीकार किया है।

वीर-गाथाओंमें 'हिंदू' शब्द

यदि 'हिंदू' नाम अपमानके लिये मुसल्मान बिदेशियोंकी देन होता तो आयुभर मुसल्मान शासकोंसे लोहा लेनेवाले देश, जाति और धर्माभिमानकी जागती ज्योति दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, वीर छत्रशाल और गुरुगोविन्दसिंह-जैसे—'अभिमानविहीनानां किं धनेन किमायुषा'—के पक्के पुजारी शूरवीर अपनेको गौरवपूर्वक 'हिंदू' न कहते और उनके स्तुति-पाठक अमर कवि उन्हें पदे-पदे हिंदू बताकर धर्मयुद्ध करनेके लिये प्रोत्साहित न करते।

चन्द बरदाईके महाकाव्यमें हिंदू

हिंदी भाषाके बाल्मीकि कहे जानेवाले चन्द बरदाईके भी पिता कवि 'बेनन', जो कि अजमेर किला—तारागढ़के तत्कालीन महाराज पृथ्वीराजके पिताके दरबारी भाट थे, अपने काव्यमें लिखते हैं कि—

अटल ठाट मही पाट अटल तारागढ स्थानम्।
अटल नग्र अजमेर अटल हिंदव अस्थानम्॥

कवि चन्द बरदाईने अपने सुप्रसिद्ध महाग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' में लिखा है कि पिथौराने आक्रान्ताको पकड़कर पाँच दिनोंतक सम्मानपूर्वक कैदमें रक्खा, फिर शाहके गिड़गिड़ानेपर उसे इस शर्तपर छोड़ा कि वह पुनः कभी 'हिंदू' पर चढ़ाई करनेका दुस्साहस न करेगा। यथा—

राखि पाँच दिन शाहि अदब आदर बहु किन्नो।
सुजहुसेन गाजी सुपूत हत्थे ग्रहि दिन्नो॥
किय सलाम तिन बार जाहु अपन्ने सुथानह।
मति 'हिंदू' पर साजि सज्जि आवो स्व स्थानह॥

अर्थात् 'पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनको पाँच दिनतक शाही कैदी बनाकर बहुत आदरके साथ कैदमें रक्खा; फिर उसे संदेश दिया कि (शहाबुद्दीन हमारे दरबारमें हाजिर होकर) तीन सलाम करे और अपने देशको वापिस लौट जाय और फिर कभी फौज बटोरकर किसी हिंदूपर चढ़ाई करनेका दुस्साहस न करे।' इससे आगेके प्रकरणोंमें हमें स्थान-स्थानपर 'हिंदू' शब्दका प्रयोग मिलता है।

एक जगह चन्द कवि दुर्गासे विजय-प्रार्थना करता हुआ कहता है कि—

दुर्गे हिंदू राजा रु बंदी न आयं
जपे जाप जालं घरं तू सहायम् ।

पृथ्वीराज तेरहवें आक्रमणमें धोखेसे चन्दसहित पकड़ा गया और शहाबुद्दीनने गजनीमें आँखें निकलवाकर उसे कैदमें रक्खा । एक मुद्दतके बाद शब्दवेधी बाणकी परीक्षामें चन्दके संकेतपर उसने शहाबुद्दीनको ही अपने अचूक बाणका निशाना बनाकर खत्म कर दिया । तब चन्दने उछलकर कहा—

धन हिंदू पृथिराज जिने रजवट्ट (अभिमान) उजारिय ।
धन हिंदू पृथिराज बोल कलिमज्झ उजारिय ॥
धन हिंदू पृथिराज जेन सुविहान है संध्यौ ।
बारह बार ग्रहि मुविक अन्त समय सर बंध्यौ ॥ १ ॥
नयन बिना नर घात कहौ ऐसी किहि किद्दि ।
हिंदू तुरक अनेक हुवे पै सिद्धि न सिद्धि ॥ २ ॥
(पृथ्वीराज-रासो)

हिंदूपति राणा प्रताप

राणा प्रतापका समस्त गौरव मानो सिमटकर एकमात्र 'हिंदूपति' शब्दमें ही केन्द्रित हो जाता है । अतः उन्हें वीर-गाथाओंमें इसी नामसे स्मरण किया गया है ।

वीर पृथ्वीराजने अपना एक निजी गुप्त पत्र राणाके पास भेजा, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

अकबर समुद्र अथाह, तिंह डूबा हिंदू तुरक ।
मेवाड़ौ तिन माँहि, पोयण फूल प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबर घोर अन्धार, ऊंघाणा हिंदू अबर ।
जागे जग दातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ २ ॥
'हिंदूपति' परताप ! पत राखो हिंदुवाण की ।
सहे बिपति संताप, सत्य सपथ कर आपणी ॥ ३ ॥

कर्नल टाड आदि राजस्थानके इतिहास-लेखक एक-स्वरेण कहते हैं कि राणा प्रतापको जब उपर्युक्त पत्र मिला तो वह अपनेको पृथ्वीराजके शब्दोंमें 'पोयण फूल' कमल-पुष्प और हिंदू-जातिका एकमात्र पहरेदार सुनकर असह्य दुःखमें सहसा लिखे गये अपने संधि-पत्रपर उग्र पश्चात्ताप करने लगे । पारिवारिक मोह-मायाके बादल स्वातन्त्र्य-प्रेमकी झंझावातके झकझोरसे नेत्रोंके रास्ते बरस-बरसकर सदाके लिये अनन्त आकाशमें विलीन हो गये । पूर्ववत् वही गर्व-गौरव, वही जाति-गरिमा पुनः जाग्रत् हो गयी । फिर सीना तानकर और सिर ऊँचा करके तथैव फुंकारने लगे और अकबरको लिख भेजा कि—

तुरक कहसि मुख हिंदबो, इण तन सूँ इक लिंग ।
ऊगे जाही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥

अर्थात् मैं अपने कुलदेवता श्रीएकलिंग महादेवकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि हिंदूके मुखसे अब भी अकबरको 'तुरक' ही कहा जायगा—'शाह' नहीं । सूर्य ठीक उसी पूर्व दिशामें उगेगा जिसमें कि सदैव उगता आया है ।

वीर पृथ्वीराज बीकानेरीके उपर्युक्त ऐतिहासिक पत्रमें राणा प्रतापको 'हिंदूपति' कहकर सम्बोधित किया गया था, जिससे प्रभावित होकर राणा पुनः हिंदुओंकी 'पति' रखनेको कटिबद्ध हो गये । उस दिनसे उन्हें 'हिंदूपति' के नामसे ही वीर-गाथाओंमें सतत स्मरण किया जाने लगा । यहाँ 'हिंदूपति' शब्दका अर्थ हिंदुओंका पति—रक्षक किंवा स्वामी-मात्र अभिप्रेत नहीं है, किंतु प्राकृत भाषानुसार हिंदुओंका 'पत' इज्जत-प्रतिष्ठा किंवा मूर्तिमान् गौरव ही अभिमत है ।

राणा वंशधरोंमें भी 'हिंदुत्व' का परम्परागत यह अभिमान तथैव अक्षुण्ण बना रहा । औरंगजेबने जब हिंदुओं-पर जजिया कर लगाया तो मेवाड़के तत्कालीन महाराजा राणा राजसिंहने औरंगजेबको एक पत्र लिखकर बहुत बुरी तरह फटकार बतलायी थी । उस पत्रमें राणाने पदे-पदे अपनेको जिन गौरवपूर्ण शब्दोंमें 'हिंदू' नामसे स्मरण किया है, वे किसी भी हिंदू-शब्द-विरोधी जीवकी आँखें खोलनेके लिये पर्याप्त हैं ।

छत्रपति शिवाजीका अमर हिंदुत्व

शिवाजीके गुरुदेव श्रीस्वामी समर्थ रामदास महाराजने अपने परम प्रिय शिष्य शिवाको अपने एक स्वप्नका वर्णन करते हुए कहा कि—

बुडाले सर्वही पापी, हिंदुस्थान बळावलें ।
अभक्तांचा क्षयो झाला, आनन्द वन भू बनी ॥

अर्थात् मुझे ऐसा स्वप्न देख पड़ा कि मानो हिंदुस्थानके अथाह सागरमें समस्त पापी म्लेच्छ डूब मरे, इस प्रकार अभक्त लोगोंका सर्वनाश हो गया और भारतभूमि पुनः आनन्दमय काननके समान बन गयी ।

शिवाजीके अमर कवि भूषण—जिनकी कवितामें पदे-पदे बीररसका अगाध सागर ठाठें मारता दीख पड़ता है—जिसकी उमड़ती हुई उत्ताल तरंगें असीम आकाशके भी परले छोरको छूती हुई-सी पाठकके हृदयको सहसा उद्वेलित कर डालती हैं—अपने 'शिवा-बावनी' आदि कवित्तसंग्रहमें 'हिंदू' शब्दकी गरिमाको इस प्रकार व्यक्त करते हैं। औरंगजेबको खुली चुनौती देते हैं—

(क) लाज धरौ शिवजी से लरौ,
सब सैयद शेख पठान पठायके।
भूषण यहाँ गढ़ कोटिन हारे,
जहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसायके॥
हिंदुन के पति सौं न बिसात,
सतावत हिंदु गरीबन पायके॥
लीजै कलंक न दिल्ली के बालम,
आलम आलमगीर कहायके॥ १॥

(ख) राखी हिंदुवानी हिंदवान के तिलक राख्यौ
स्मृति और पुराण राख्यौ वेद विधि मुनि में।
हिंदुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की
काँधे में जनेऊ राख्यौ माला राखी कर में॥

जब कूटनीतिज्ञ औरंगजेबने राजा जयसिंहको अपनी सेनाका अध्यक्ष बनाकर शिवाजीसे लड़ने भेजा तो शिवाजीने जयसिंहसे कहा कि—

'तुम जितने किले चाहो, उतने ही तुम्हें दे सकता हूँ, स्वयं अपने हाथों तुम्हारा ध्वज किलोंपर चढ़ा दूँगा। परंतु मुसल्मानोंको यश नहीं दिया जा सकता। मैं और तुम दोनों ही हिंदू हैं, राजपूत हैं। हिंदूका राज्य किसी भी हिंदूके पास रहे, इसमें हानि नहीं। हिंदूधर्मके रक्षकको सौ-सौ बार नमस्कार करनेको प्रस्तुत हूँ, परंतु हिंदूधर्मकी मानहानि हो, यह कभी सह्य नहीं हो सकता।'

वीर छत्रसालका अमर हिंदुत्व

वीर छत्रसालके विषयमें 'छत्रसाल' नामक वीर-गाथामें प्रसिद्ध पाल कविने लिखा है कि—

हिंदू तुरक दीन द्वै गाए। तिनसौं वैर सदा चलि आए॥
जब ते शाह तखत पर बैठे। तब सौं हिंदुन सौ उर डाठे॥

जब छत्रसाल बुन्देला वीर शिवाजीसे मिला तो शिवाजीने कहा कि—

हिंदूपत महाराज! तुम, हो क्षत्रिय सिरताज।
जीतौ अपनी भूमि कौ, करौ देशको राज॥

वीर छत्रसाल जब विजय-यात्रासे लौटता हुआ वयोवृद्ध सरदार सुजानसिंहसे मिला तो उसने महाराजको एक अद्भुत तलवार भेंट करते हुए कहा—

हिंदू-धर्म जगाइ चलाओ। दौरि दिलीदल हतनि हिलाओ॥

हिंदु-रक्षक हुतात्मा गुरु तेगबहादुर

इतिहासमें प्रसिद्ध है कि जब काश्मीरमें मुसल्मानोंके अत्याचार चरम सीमाको लाँघ गये तो काश्मीरी पण्डितोंका मण्डल श्रीगुरु तेगबहादुरसे मिला और उसने बताया कि मुसल्मान शासक उन्हें इस्लाम मतमें दीक्षित हो जानेके लिये बाध्य कर रहे हैं। तब गुरुजीने कहा कि—

तुम सुनो दिजेसु ढिग तुर्केसु अवस जाइ इमि गावौ।
इक वीर हमारा हिंदू भारा माईचारा लख पावौ॥
है तेग बहादुर जगत उजागर ताको तुम यदि तुर्क करो।
तिस पाछे तबहि, हम फिर सबही बनिहैं तुर्क न देर भरो॥
(पंथ-प्रकाश)

जब गुरु तेगबहादुरसे बादशाहने मुसल्मान बन जानेको कहा तो गुरुजीने उत्तर दिया—

उत्तर भन्यौ धर्म हम हिंदू। अतिप्रिय को किमि करें निकंदू॥
(सूर्यप्रकाश)

जागरूक हिंदू-गुरु गोविन्दसिंह

दशमेश पिता श्रीगुरु गोविन्दसिंहका नाम हिंदूधर्म-रक्षकोंमें बड़े आदरके साथ लिया जाता है, जिन्होंने हिंदुत्वकी रक्षाके लिये अपने वृद्ध पिता और सुकुमार पुत्रोंको स्वयं हँसते-हँसते बलिवेदीपर चढ़ जानेके लिये प्रेरित किया और अन्तमें स्वयं भी यावज्जीवन धर्म-विरोधियोंसे लोहा लेते हुए पटना (बिहार) से पंजाबतक और चमकौर (पंजाब) से नाँदेड़ (आन्ध्र प्रान्त) तक भारतके चारों कोनोंमें परिभ्रमण करते हुए ज्योति-ज्योत समा गये।

आपने स्वनिर्मित दशम ग्रन्थ (विचित्रनाटक) में लिखा है कि—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे।
जगे धर्म हिंदू सभी भंड भाजे॥

इस प्रकार विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीके ग्रन्थोंसे लेकर आजतकके समस्त हिंदी-साहित्यमें 'हिंदू'शब्दकी गौरव-गरिमा भरी पड़ी है। अब जरा आधुनिक गवेषकोंकी सम्मतियोंका भी मनन कीजिये।

आधुनिक गवेषकोंके मतमें 'हिंदू' और 'हिंदुस्थान'

स्वाधीनता-संग्रामके महान् सेनानी एवं हिंदूमहासभाके नेता वीर सावरकरने अपने 'हिंदुत्व' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि—

'हमारे पूर्वपुरुषोंने ही 'हिंदु' नाम तो आदिकालसे ही अपना लिया था, संसारके अन्य राष्ट्र भी हमारे देशको सप्तसिन्धु या हफ्तहिंदु और हमें सिन्धु या हिंदु नामसे जानते थे। यह सच हो तो मानना पड़ेगा कि 'हिंदु' नाम आर्योंसे भी पूर्वका है। आदिनिवासी भी अपनेको हिंदू कहते थे। संस्कृतमें 'ह' को 'स' हो जानेके कारण आर्यलोग इसे सिन्धु कहने लगे। मूल नाम 'हिंदू' ही है। 'हिंदू' शब्दको अर्वाचीन माननेवालोंके पास इस युक्तिका कोई उत्तर नहीं है। (हिंदुत्व, पृष्ठ ९। ११)

पं० नरदेव शास्त्री, आचार्य ज्वालापुर महाविद्यालय हरिद्वारने अपने ऋग्वेदालोचन (पृष्ठ १५८) में लिखा है कि—"ऋग्वेदमें 'सप्तसिन्धु' का कई स्थानोंपर निर्देश है। उसमें दो-एक मन्त्रमें तो वह आर्यावासका वाचक है।"

सुप्रसिद्ध डाक्टर श्रीसम्पूर्णानन्दजीने 'आर्योंका आदि देश' नामक अपनी पुस्तक (पृष्ठ ८०) में लिखा है—

"वेदोंके आधारपर आर्योंका अर्थात्—आर्य-संस्कृतिका आदिम स्थान 'सप्तसिन्धव' ही था।...वेदोंमें 'सप्तसिन्धव' देशके अतिरिक्त और किसी देशका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।"

प्रसिद्ध हिंदू महासभाई नेता श्रीचन्द्रगुप्त वेदालंकार अपनी 'अन्तर्ज्वाला' नामक पुस्तक (पृष्ठ १७) में लिखते हैं कि—

"वैदिक कालसे सिन्धु शब्द 'हिंदुस्थान' की स्वाभाविक सीमाओं—'सिन्धु' नदीसे सिन्धु (समुद्र) पर्यन्तके लिये व्यवहृत होता आया है।"

हिंदू-महासभाके महान् नेता क्रान्तिकारी देशभक्त भाई परमानन्दने अपनी 'हिंदू-संगठन' नामक पुस्तक (पृष्ठ ११) में लिखा है कि—

"'हिंदु' हमारे लिये एक नाम ही नहीं है, इसके साथ तो आरम्भसे लेकर हमारी जातिका इतिहास बँधा है।... इस नामकी कथा बतानेवाले हमारे कवि और अवतार हुए हैं, इसके लिये शास्त्रों और दर्शनोंके रचयिता हुए हैं, इसकी मानरक्षाके लिये हमारे वीर और क्षत्रिय युद्ध करते रहे, इसके लिये उन्होंने अपने प्राणोंको वार दिया।"

'मुहम्मदी हिंदू' की भ्रामक कल्पना

आज कांग्रेस सरकारकी हिंदू-विरोधी नीतिने हमें इतना आतङ्कित कर दिया है कि कुछ नेताओंने हिंदूकी नयी-नयी मनमानी परिभाषाएँ प्रारम्भ कर दी हैं। उन्होंने हिंदूकी नयी परिभाषा की—'जो भी भारतमें रहता है, वही हिंदू है। जिस प्रकार आर्यसमाजी, सनातनी, कबीरपंथी, दादूपंथी हिंदू हैं, उसी प्रकार मुसल्मान 'मुहम्मदी हिंदू' हैं।"

जैसा कि हमने विवेचन किया है कि धर्मशास्त्रोंके अनुसार हिंदू-संस्कृतिकी अपनी विशिष्टताएँ हैं तथा इस्लाम मजहब हिंदू-संस्कृति तथा हिंदूधर्मके सिद्धान्तोंके बिल्कुल विपरीत गढ़ा गया है। इसके अतिरिक्त वीर सावरकरकी परिभाषामें यह भी मननीय है कि 'जिसकी पुण्यभूमि भारतमें है, वह हिंदू है। हमने इसे जिस सम्प्रदायके प्रवर्तक भारतमें हुए, वह हिंदू है—ऐसा माना है। घृणा और अत्याचारोंकी भित्तिपर निर्मित इस्लाम-मतावलम्बीको हिंदू कदापि नहीं ठहराया जा सकता। उसे भारतीय या हिंदुस्थानी कहा जा सकता है।

पाकिस्तानका हिंदू कौन हुआ ?

यदि 'मुहम्मदी-हिंदू' की भ्रामक कल्पनाको व्यापकता, उदारता तथा सहिष्णुताके नामपर स्वीकार भी कर लिया गया तथा 'हिंदू' का किसी विशिष्ट धर्म तथा संस्कृतिसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया तो फिर उस परिभाषाको अपनाकर हम पाकिस्तान तथा अन्य मुस्लिम देशोंमें रहनेवाले लाखों-करोड़ों हिंदुओंको 'रामपंथी मुसल्मान' बननेपर विवश नहीं करेंगे। यदि किसी देशमें रहनेमात्रसे उसका धर्म बहुसंख्यक जातिमें विलीन हो जाता है तो प्रवासी हिंदुओंको अपनेको 'हिंदू' कहनेका अधिकार ही न रहेगा। फिर यदि पाकिस्तानका 'मुहम्मदी मुसल्मान' अपने ही देशके 'रामपंथी मुसल्मान' के साथ अत्याचार करता है तो हमें उसके लिये कष्ट अनुभव करनेकी आवश्यकता ही न रहेगी।

कुछ नेता कांग्रेस तथा कम्युनिस्टोंके कोपसे बचनेके लिये 'हिंदू-संस्कृति' और 'मुस्लिम-संस्कृति' को समान बताने लगे हैं तो कुछने इतिहासके नये तथ्योंका रहस्योद्घाटन किया है कि 'शिवाजी, महाराणा प्रताप आदिका संघर्ष मुसल्मानोंसे नहीं, अपितु मुगलोंसे था।' यह सब भ्रामक विचार महान् हिंदूजाति, हिंदूधर्म एवं हिंदू-संस्कृतिके लिये विनाशक ही सिद्ध होंगे।

सैक्युलर स्टेट बनाम धर्म-राज्य

नव स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भारतको 'सैक्युलर (Secular) स्टेट' घोषित कर दिया गया है। लगे हाथों जरा हम इस 'सैक्युलर' शब्दके अर्थोंपर भी विचार कर लें। यहाँ सैक्युलर स्टेटके दो अर्थ हो सकते हैं—१–धर्म-निरपेक्ष राज्य अर्थात् ऐसा राज्य जिसमें किसी भी धर्मकी मान्यता न हो। २–ऐसा राज्य जिसमें सब धर्मोंका समान आदर हो और किसी धर्मविशेषके साथ पक्षपात न हो। इनमेंसे जहाँ-तक प्रथम अर्थका सम्बन्ध है, हम ऊर्ध्वबाहु होकर खुले कण्ठसे यह घोषणा कर सकते हैं कि वर्तमान भारतके कर्णधारोंने इसे जिस पथपर डाला है, उससे यह राष्ट्र अविलम्ब ही सच्चे अर्थोंमें धर्मनिरपेक्ष अर्थात् धर्मरहित 'अधार्मिक' राष्ट्र बन ही जायगा—इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं।

हाँ, दूसरे अर्थके सम्बन्धमें हमें आपत्ति है और अवश्य है। कांग्रेसकी दृष्टिमें हिंदू तो सदासे ही सौतेली माँके बेटे रहे हैं और वे आज भी हैं। आज—धर्म और पृथक् संस्कृति नामपर राष्ट्र-विभाजन हो जानेपर इस बची-खुची हिंदूभूमिमें भी—अपनेको 'हिंदू' कहना साम्प्रदायिकोंकी लिस्टमें अपना नाम लिखाना समझा जाता है और कथमपि खतरेसे खाली नहीं है। इसके अतिरिक्त जब यहाँ अब भी मुस्लिम-तोषिणी नीति पूर्ववत् चल रही है, फिर समान बर्ताव कहाँ? सभी हिंदू-संस्थाओं और करोड़ों हिंदुओंके चिल्लाने तथा सत्याग्रह करनेपर भी 'गोहत्या-बंदी कानून' केवल इसलिये नहीं बनता कि इससे मुसल्मानोंके नवनीत-कोमल हृदयपर ठेस लग जायगी और हिंदुओंके लाख विरोध करनेपर भी हिंदूकोड, तलाक बिल आदि संस्कृति-घातक कानून इसलिये पास कर दिये जाते हैं; क्योंकि निर्जीव हिंदुओंका विरोध नगण्य है।

धर्मनिरपेक्ष कांग्रेस सरकारने जब 'हिंदू कोड बिल' संसद्में उपस्थित किये थे तो यह आवाज उठी थी कि इन्हें 'हिंदू कोड' का रूप न देकर 'मानव कोड' बनाकर पास किया जाय और जैसा कि होना न्याय था—यह 'कोड' भारतके सब प्रजाजनों—हिंदू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी आदिपर लागू होता। परंतु ऐसा न हुआ; क्योंकि सुधारकी आवश्यकता तो हिंदुओंमें थी। मुसल्मान, ईसाई आदि तो पहलेसे ही सुधरे हुए हैं—सब एकपत्नीव्रती हैं, सबने स्त्रियोंको समानाधिकार दे रक्खे हैं, अटूट विवाह-बन्धनकी बुराई उनमें है ही नहीं, सवर्ण, असवर्णको तमीजसे वे बिल्कुल परे हैं ही, फिर भला उनके लिये कानूनकी आवश्यकता भी क्या?

मुसल्मानोंको विवाह-कानूनमें छूट, मुसल्मानोंद्वारा प्रारम्भ किये गये दंगोंके लिये भी हिंदुओंको कोसना तथा रबात मुस्लिम सम्मेलनमें भाग लेनेकी उत्सुकताने धर्म-निरपेक्षताको नंगा कर दिया है।

निर्भरतासे प्रभु-प्राप्ति

जो निर्भर करता प्रभुपर ही, जिसका प्रभुमें दृढ़ विश्वास।
नहीं सताती चिन्ता उसको, रहता वह न कदापि उदास॥

नित्य स्मरण करता वह प्रभुका मनमें भरे पूर्ण आह्लाद।
नित निश्चिन्त प्राप्त करता रहता वह प्रभुका कृपा-प्रसाद॥

प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति सबमें उसे दीखते श्रीभगवान।
मुदित,सफल-जीवन उससे, प्रभु मिलते स्वयं बिना व्यवधान॥

धर्मका वास्तविक स्वरूप

(लेखक—मेहता श्रीरणजीतमलजी)

'यतो धर्मस्ततो जयः ।'

भावार्थ—'जहाँ धर्म है, वहाँ जय (सफलता) है ।'

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः'

भावार्थ—'जो पुरुष धर्मके विरुद्ध आचरण करता है वह दुखी होता है और जो धर्मकी सेवा करता है या आश्रय लेकर उसके अनुकूल अपना जीवन बनाता है, उसको सब प्रकारका लाभ होता है ।'

धर्मसे प्रयोजन उस ज्ञान और आचरणसे है, जिससे इस लोकमें सुख-शान्ति और परलोकमें सद्गति प्राप्त होती है । इससे अधिक लाभ देनेवाला कोई दूसरा साधन या रास्ता मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये नहीं हो सकता।

इसी कारणसे प्रत्येक देश और प्रत्येक युगमें इस ज्ञान और आचरणकी खोज होती आयी है । फलस्वरूप 'धर्मग्रन्थ' बन गये हैं। इस ज्ञानके दो विभाग बन गये हैं—

(१) सदाचारकी शिक्षा और

(२) आध्यात्मिक विद्या

(१) आचार-शिक्षाके मूल सिद्धान्तोंके प्रति सभी धर्मोंने सहमति दी और उनका समर्थन किया है एवं इसके स्वरूपका वर्णन भर्तृहरिने बड़े सुन्दर शब्दोंमें दर्शाया है—

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥

भावार्थ—'किसी प्राणीकी हत्या न करना, दूसरेका धन हरण नहीं करना, सत्य बोलना, यथाशक्ति अवसरपर दान देना, दूसरोंकी स्त्रियोंके सम्बन्धमें मौन रहना, तृष्णाके प्रवाहको रोकना, गुरुजनों—बड़े लोगों (Saintly Persons) का आदर करना, प्राणीमात्रके लिये भलाईकी भावना रखना—यह रास्ता सब शास्त्रों (Religious Scriptures) को स्वीकार है और सर्वसुलभ भी है तथा इससे कल्याण एवं उन्नति होना निश्चित है ।'

संसारमें धर्मके विषयमें मतभेद और वैमनस्य रहते आये हैं और इससे व्यक्ति तथा समाज दोनोंको हानि पहुँचती है तथा पहुँची भी है ।

विवेकसे काम लिया जाय तो कलहके स्थानपर पारस्परिक स्नेह और सहयोग हो सकते हैं, जिसके उज्ज्वल दृष्टान्त संतोंके जीवनमें दृष्टिगोचर होते हैं । इस मतभेदका मूल कारण पुष्पदन्तके **'महिम्नःस्तोत्र'**में बड़ी चतुराईसे वर्णित किया गया है—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

भावार्थ—'जैसे विभिन्न नदियाँ विभिन्न टेढ़े-सीधे मार्गोंसे जाकर एक ही सागरमें प्रवेश करती हैं, वैसे ही रुचिकी विचित्रताके कारण मनुष्य विभिन्न साधनोंके द्वारा एक ही परमात्माकी ओर जाते हैं ।'

सदाचारका मूल मन्त्र यह है कि 'जो व्यवहार अपनेको अप्रिय और हानिकारक प्रतीत हो, वैसा दूसरोंके साथ न किया जाय'—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

यह सिद्धान्त नकारात्मक (Negative) है । इसका सकारात्मक (Positive) सुन्दर रूप एक दोहेमें कहा गया है—

चार वेद षट् शास्त्रमें बात मिली है दोय ।
सुख दीन्हें सुख होत है, दुख दीन्हें दुख होय ॥

इस सिद्धान्तका समर्थन हरेक धर्मग्रन्थमें मिलेगा और किसी भी आचार्यने इसका खण्डन नहीं किया है । इसलिये यह विश्व-धर्मका सिद्धान्त है । इसका समर्थन विज्ञानवाद और निजी अनुभवसे भी होता है; क्योंकि यह बात निर्विवाद है कि जैसा बीज बोया जाता है, उसीके अनुरूप उसका फल होता है । साधारण पुरुषोंके लिये सदाचारी बननेके हेतु इन नीचे लिखे पाँच नियमोंको धारण करना होगा—

(१) किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करना (अहिंसा) ।

(२) सत्य बोलना (सत्य) ।

(३) दूसरोंकी वस्तु चाहे छोटी हो या बड़ी, हरण तो करना ही नहीं, उसपर मन भी न चलाना (अस्तेय)।

(४) शास्त्र-विधिके अनुसार ब्रह्मचर्यका पालन करना। अष्टमैथुनका त्याग करना, विवाहित हो, परस्त्रीको माता या बहिनकी तरह समझना और उससे मन-तन-वचनको बचाये रखना (ब्रह्मचर्य)।

(५) बिना जरूरतके संग्रह न करना और आवश्यक संग्रहमें भी ममत्व न रखना (अपरिग्रह)।

ऊपर बताये गये नियमोंको जिन लोगोंने समझा है और इनका आचरण किया है, उनका जीवन सुख-शान्तिमय सफल रहा है। जिन्होंने इन नियमोंको तोड़ा है, उनको अन्तमें दुखी होना और पश्चात्ताप करना पड़ा है; किंतु पहलेसे ही चेतना चाहिये। अवसर बीत जानेपर और पापकर्म बन जानेपर तो पापोंका फल निश्चित रूपसे भोगना ही पड़ेगा।

बहुत-से लोगोंको तो धर्म और अधर्म या पुण्य-पापके फलका अनुभव इसी जीवनमें हो जाता है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो पूर्वजन्मकी तपस्या और पुण्यके फलसे यहाँ दुःख भोगनेसे बच जाते हैं; लेकिन यह सबको याद रखना चाहिये कि पाप-कर्मोंका बदला अवश्य चुकाना होगा—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

'शुभ और अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना होगा।'

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

—गोस्वामी तुलसीदास

पुण्य और पापके प्रारब्धका फल प्रत्यक्ष रूपसे देखनेमें आता है, यदि उसको ध्यानसे देखा जाय। कई पुरुष जन्मकालसे लेकर शरीर-त्यागके समयतक हर प्रकारके सुख भोगते हैं और बहुत-से प्राणी आजन्म हर प्रकारके दुःख भोगते रहते हैं। इसका दृश्य देखना हो तो सड़कोंपर भटकते हुए अङ्गहीन भिखारी और अस्पतालोंमें कराहते हुए रोगियोंको देखिये और उनके जीवनसे शिक्षा लीजिये।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि सदाचारके विषयमें मतभेद बहुत कम है। जो है वह भी देश, काल, पात्र तथा अधिकारी भेदके कारण है। उसके सम्बन्धमें खण्डन-मण्डनसे कोई लाभ नहीं है। आवश्यकता है—सहयोग और समन्वयकी।

धर्मका दूसरा महत्त्वपूर्ण अङ्ग है—'अध्यात्मविद्या।' यह विषय बहुत गहन है। इसी कारणसे इसके सम्बन्धमें अधिकाधिक मतभेद प्रचलित धर्मोंमें हुए हैं; क्योंकि वह मनुष्यकी प्राकृत सीमाके परेकी चीज है; क्योंकि वह अनन्त है और अगोचर भी। योग, भक्ति और ज्ञानके द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त की जाती है और उससे कल्याण हो सकता है। यह विषय श्रद्धा और साधनाका है। वाद-विवादको इसमें कोई स्थान नहीं है।

पर यह सत्य है कि सदाचारपर जितना बल दिया जायगा और उसमें जितनी ही सफलता प्राप्त की जायगी, उतना ही अध्यात्मविद्याका मार्ग सुलभ और सरल होता जायगा। परमात्मा अविनाशी, गुणातीत, अगोचर और आनन्दस्वरूप तथा अनन्त है। उसका स्वरूप पूर्णरूपसे जाननेमें मनुष्यकी बुद्धि असमर्थ है। उसकी कृपासे इतना ज्ञान अवश्य हो सकता है कि जिससे जीवन सफल हो जाय। जो महान् पुरुष समय-समयपर संसारमें आये हैं, उन्होंने इसके साधन भी बतलाये हैं। आवश्यकता अभ्यास–साधनाकी है, इसके सम्बन्धमें दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं, जिनमें यह बतलाया गया है कि परमात्माको प्रसन्न करनेके अनेक साधन हैं—

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

भावार्थ—परमात्माकी स्तुति ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुत् आदि सभी भव्य स्तोत्रोंसे करते हैं और सामवेदको गानेवाले छन्द, अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषद्के साथ उच्चारण करते हैं और ध्यानमें स्थित होकर योगीलोग जिसका प्रकाश देखते हैं और जिसका पूर्णरूप देवताओं और दानवों–किसीने नहीं देखा है, उस परमात्माको हाथ जोड़कर हम नमस्कार करते हैं।'

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

भावार्थ—"जिस परमात्माको शिवजीके उपासक 'शिव' नामसे भजते हैं, वेदान्तीलोग जिसकी आराधना 'ब्रह्म'के नामसे करते हैं, बौद्ध लोग 'बुद्ध' कहकर पुकारते हैं, नैयायिक-लोग जिसको 'कर्ता' कहकर बतलाते हैं, जैनधर्मवाले जिसको 'अर्हन्' नामसे याद करते हैं और मीमांसाको माननेवाले जिसको 'कर्म' कहते हैं—ऐसा परमात्मा तीनों लोकोंका स्वामी है और आनन्दका भण्डार है, उससे अपने कल्याणके लिये विनती करनी चाहिये।" उसकी आज्ञा क्या है, इसको साधु-संतों और महापुरुषोंने बतलाया है और उनके अनुभव तथा शिक्षासे दूसरे सभी लोग लाभ उठा सकते हैं।

सामान्यतः मनुजीके बताये हुए धर्मके इन दस लक्षणों-पर ध्यान देकर उनका पालन करना चाहिये—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(मनुस्मृति ६ । ९२)

भावार्थ—१-धृतिसे तात्पर्य किसी भी परिस्थितिमें विचलित न होनेसे है, २. क्षमा—द्वन्द्वोंको सहन करनेका सामर्थ्य, ३. दमसे मनको नियन्त्रणमें रक्खे, ४. अस्तेय—परायी वस्तुका हरण न करना, ५. शौच—आभ्यन्तरिक और बाह्य पवित्रता, ६. इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियोंको वशमें करना, ७. धी—सद्बुद्धिका सेवन करना, ८. विद्या—ज्ञानकी प्राप्तिमें सहायता करनेवाली शिक्षा, ९. सत्य—सदैव सत्य बोलना, १०. अक्रोध—क्रोधपर विजय प्राप्त करना।

प्रभु, मुझे निर्विकार कर !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।

गीताके तेरहवें अध्यायका यह श्लोक अत्यन्त ही सारगर्भित है। विनोबाने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है—

'इस स्वरूपमें हमें परमात्माका उत्तरोत्तर अधिक अनुभव करना है—

१-उपद्रष्टा—प्रभु पहले तटस्थ रहकर देखता है।

२-अनुमन्ता—फिर नैतिक जीवनका आरम्भ होनेपर हमसे सत्कर्म होने लगते हैं, तब हमें शाबाशी देता है।

३-भर्ता—फिर चित्तके सूक्ष्म मल धो डालनेके लिये अपने प्रयत्नोंको अपर्याप्त देखकर भक्त जब पुकारता है तो वह अनाथनाथ सहायताके लिये दौड़ पड़ता है।

४-भोक्ता—उसके बाद फलको भी भगवान्‌के अर्पण करके उसे भोक्ता बना देना, और—

५-महेश्वर—अन्तमें तमाम संकल्प उसीके अर्पण करके सारा जीवन 'हरिमय' कर देना है।

'यही मानवका अन्तिम साध्य है, कर्मयोग और भक्ति-योगरूपी दोनों पंखोंसे उड़ते हुए साधकको इस अन्तिम मंजिलतक जा पहुँचना है।'

× × ×

'गीताप्रवचन' में कहते हैं विनोबा—

"जबतक देहस्थित आत्माका विचार मनमें नहीं आता है, तबतक मनुष्य साधारण क्रियाओंमें ही तल्लीन रहता है। भूख लगे तो खा लिया, प्यास मालूम हुई तो पानी पी लिया, नींद आयी तो सो गये। इससे अधिक कुछ नहीं जानता। इन्हीं बातोंके लिये वह लड़ेगा। इन्हींकी प्राप्तिका लोभ मनमें रक्खेगा। इस तरह इन दैहिक क्रियाओंमें ही वह मग्न रहता है।

"विकासका आरम्भ तो इसके बादसे होता है। इस समयतक आत्मा सिर्फ देखता रहता है। माँ जिस तरह कुएँकी ओर रेंगते जानेवाले बच्चोंके पीछे सतत सतर्क खड़ी रहती है; उसी प्रकार आत्मा हमपर निगाह रखे खड़ा रहता है, शान्तिके साथ वह सब क्रियाओंको देखता रहता है। इस स्थितिको 'उपद्रष्टा' साक्षीरूपसे सब देखनेवाला कहा है।

"इस अवस्थामें आत्मा देखता है, परंतु अभी वह सम्मति-स्वीकृति नहीं देता है; परंतु यह जीव जो अबतक अपनेको देहरूप समझकर सब क्रिया, सब व्यवहार करता है, वह

आगे चलकर जागता है। उसे भान होता है कि 'अरे मैं पशुकी तरह जीवन बिता रहा हूँ।'

जीव जब इस तरह विचार करने लगता है, तब उसकी नैतिक भूमिका शुरू होती है। तब कदम-कदमपर वह उचित-अनुचितका विचार करता है। विवेकसे काम लेने लगता है। उसकी विश्लेषण-बुद्धि जाग्रत् होती है। स्वैर क्रियाएँ रुकती हैं। स्वच्छन्दताकी जगह संयम आता है। जब जीव इस नैतिक भूमिकामें आता है, तब आत्मा केवल स्वस्थ रहकर नहीं देखता, वह भीतरसे अनुमोदन देता है—'शाबास, खूब।'—ऐसी आवाज अंदरसे आती है। अब वह केवल 'उपद्रष्टा' न रहा, 'अनुमन्ता' हो गया।

कोई भूखा अतिथि दरवाजेपर आ जाय और आप अपनी परोसी थाली उसे दे दें, फिर रातको अपनी इस सत्कृतिका स्मरण हो तो देखिये मनको कितना आनन्द होता है। भीतरसे आत्माकी हलकी गुंजार होती है—'अच्छा काम किया।' मा जब बच्चेकी पीठपर हाथ फेरकर कहती है—'अच्छा किया बेटा! तो उसे ऐसा मालूम होता है मानो सारी दुनियाकी बख्शीस मुझे मिल गयी। उसी तरह हमारे हृदयस्थ परमात्माके 'शाबाश बेटा'—ये शब्द हमें प्रोत्साहन देते हैं। ऐसे समय जीव भोगमय जीवनको छोड़कर नैतिक जीवनकी भूमिकामें स्थित होता है।

इसके बादकी भूमिका यह है—नैतिक जीवनमें मनुष्य कर्तव्यकर्मके द्वारा अपने मनके तमाम मलोंको धोनेका यत्न करता है। परंतु एक समय ऐसा आता है, जब मनुष्य ऐसा काम करते-करते थकने लगता है। तब जीव ऐसी प्रार्थना करने लगता है—'भगवन्! मेरे उद्योगोंकी, मेरी शक्तिकी अब हद आ गयी, मुझे अधिक बल दे।'

जबतक मनुष्यको यह अनुभव नहीं होता कि उसके तमाम प्रयत्नोंके बावजूद वह अकेला कामयाब नहीं हो सकता, तबतक प्रार्थनाका रहस्य उसकी समझमें नहीं आ सकता।

अपनी सारी शक्ति लगाकर जब वह काफी नहीं मालूम होती, तब आर्तभावसे द्रौपदीकी तरह परमात्माको पुकारना चाहिये। परमेश्वरी कृपा और सहायताका स्रोत तो सतत बहता ही रहता है।

सत्कर्म होते-होते जब चित्तके स्थूल मल धुल जाते हैं और जब सूक्ष्म मल धुलनेका समय आता है तथा जब उसके सारे प्रयत्न थकने लगते हैं, तब वह परमात्माको पुकारता है और वह 'आया' कहकर दौड़ आता है। उससे मदद माँगिये तो वह बाँह फैलाकर आया ही समझो। भीमाके किनारे (पंढरपुर) कमरपर हाथ रखकर वह तैयार ही खड़ा है।

'उठाके को भुजा, कहे प्रभु आ जा।'

ऐसा वर्णन तुकाराम आदिने किया है। दरवाजा खोलो कि प्रकाश भीतर आया ही। वह उपद्रष्टा, अनुमन्ता न रहते हुए भर्ता—सब तरह सहायक होता है। मनकी मलिनता मिटानेके लिये आतुर होकर जब हम पुकारते हैं—

'मारी नाड़ तमारे हाथे प्रभु संभाळजो रे।'

हम प्रार्थना करते हैं—'तू ही एक मेरा मददगार है। तेरा आसरा मुझको दरकार है।' तब फिर वह दयाघन कैसे दूर रहेगा! भक्तकी सहायता करनेवाला वह भगवान्, अधूरेको पूरा करनेवाला वह प्रभु दौड़ पड़ता है। तब वह रैदासके चमड़े धोता है, सजन कसाईका मांस बेचता है, कबीरकी चादर बुनता है और जनाबाईके साथ चक्की पीसता है।

इसके बादकी सीढ़ी है—परमेश्वरके कृपा-प्रसादसे कर्मका जो फल मिला, उसे भी खुद न लेकर उसीके अर्पण कर देना। इस भूमिकामें जीव परमेश्वरसे कहता है—'अपना फल आप ही भोगो।' नामदेव धरना देकर बैठ गया कि 'प्रभु, दूध पीना ही पड़ेगा।' कितना मधुर प्रसंग है। वह सारा कर्मफलरूपी दूध नामदेव भगवान्‌के अर्पण कर रहा है। परमात्मा अब 'भोक्ता' हो जाता है।

इसके बाद अब संकल्प ही करना छोड़ देना है। कर्मके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र प्रभु ही हो जाने दो। ज्ञानदेवने कहा है—

माली जिधर ले गया, उधर चुपचाप गया।
यों पानी जैसा भैया होओ सदा॥

जीवनकी तमाम हलचलें, फलना-फलाना, सब अन्तमें परमात्मा ही हो जाता है।

इस तरह विकास होते-होते सारा जीवन ही परमेश्वरमय हो जाता है।

× × ×

हमें निर्विकारिताकी साधना करनी है, करते रहनी है। सतत, निरन्तर अविरल गतिसे।

शरीरके, मनके, वाणीके—तन, मन, वचनके सारे दोषोंको एक-एक कर निकाल देना है। भीतर और बाहर अपनेको धो-धोकर निर्मल बना देना है।

विकारोंको खोज-खोजकर अपने भीतरसे निकाल देना है।

लेकिन कहाँतक ?

अपनी जितनी सामर्थ्य है—वहींतक।

उसके बाद ?

उसके बाद एक ही रास्ता है—

'मारी नाड़ तमारे हाथे। प्रभु संभालजो रे।

'हे प्रभु ! मैं अपनी शक्तिभर प्रयत्न कर चुका। अब मुझे बचाना तेरे हाथकी बात है।'

प्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देना ही अन्तिम उपाय है।

'मैं निर्विकार बनूँगा'—यह अहंकार, यह मद जबतक बना रहेगा, तबतक कोई भी व्यक्ति निर्विकार बन नहीं सकता।

× × ×

श्रीघनश्यामदास बिड़लाने इस बारेमें एक बार गांधीजीसे पूछा। १३ अप्रैल १९२५ को बापूने उन्हें लिखा—

"निर्विकार बनना शक्य है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। प्रत्येक मनुष्यका यह चेष्टा करना अपना कर्तव्य है। निर्विकार होनेके साधन हैं। साधनोंमें राजा राम-नाम है। प्रातःकाल उठते ही राम-नाम लेना और रामसे कहना 'मुझे निर्विकार कर'—मनुष्यको अवश्य निर्विकार करता है। किसीको आज किसीको कल। शर्त यह है कि यह प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिये। बात यह है कि प्रतिक्षण हमारे स्मरणमें, हमारी आँखोंके सामने ईश्वरकी अमूर्त मूर्ति खड़ी होनी चहिये। अभ्याससे इस बातका होना सरल है।"

और यह तो है ही कि—

सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

आइये, हम सब सच्चे हृदयसे प्रभुसे प्रार्थना करें।

'हे प्रभु ! मुझे निर्विकार कर।'

परमात्मासे सौदेबाजी कैसी ?

(लेखक—श्रीधर्मवीरजी)

श्रीरॉनल्ड निक्सन नामके अंग्रेज सज्जनने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें उच्च शिक्षा पायी, ट्राइपॉस प्राप्त किया और भारतमें आ गये। ये विद्वान् लखनऊ-विश्वविद्यालयमें उच्च कक्षाओंको अंग्रेजी पढ़ाने लगे।

उपकुलपति श्रीज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्तीकी पत्नी श्रीमती मणिकादेवी भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें लीन रहतीं। यहाँतक कि एक दिन अपना मुण्डन करवाकर वे घर-द्वार छोड़ अल्मोड़ाके पास मीरटोलामें जा रहीं। वहाँ उन्होंने 'उत्तर वृन्दावन' नामसे स्थान बनाया और भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनाके लिये मन्दिर निर्माण करवाया। अब मणिकादेवी यशोदा मा कहलातीं। प्रोफेसर रॉनल्ड निक्सनने इन्हें अपनी गुरु-माता धारण किया और इनसे वैष्णव-संन्यासकी दीक्षा ली। ये भी गेरुए कपड़े पहन श्रीकृष्ण-भक्तिमें लग गये। यशोदा माको वे 'मा' कहते और वे इन्हें 'गोपाल' पुकारतीं। दोनोंको भगवान्का साक्षात्कार हुआ। यह कैसे हुआ ?—यह बात फिर किसी समय निवेदन की जायगी। यहाँ तो रॉनल्ड निक्सनके तत्त्वदर्शनके सम्बन्धमें थोड़ा विचार किया जाता है।

निक्सनने अपना अंग्रेजी नाम त्याग दिया। अंग्रेजियतको तिलाञ्जलि दे इन्होंने हिंदुत्वकी दीक्षा ली और नाम रख लिया 'कृष्णप्रेम'। इनका कहना था कि भगवान्से सौदा करना अपने-आपको धोखा देना है। साधक दिलीपकुमार राय श्रीअरविन्दके शिष्य हैं। ये पांडिचेरी रहते थे। वहाँसे चले इस कारण कि गुरुने भगवान्के दर्शन तो करवाये नहीं। श्रीकृष्णप्रेमके ये मित्र थे। श्रीकृष्णप्रेमने झाड़ डाली—"क्या गुरुके साथ कभी ऐसा व्यापार किया जाता है ? फिर क्या भगवान्के साथ कभी सौदेबाजी की जा सकती है कि पहले आप मुझे दर्शन दें और उसके पश्चात् मैं आपकी भक्ति करूँगा ? भगवान्से तो केवल एक ही माँग की जा सकती है और वह यह—'मैं अपना मन, बुद्धि तथा प्राण आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ। आप कृपा करके इस नगण्यकी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।"

यह माँग नहीं, प्रार्थना है और इस प्रार्थनाके सम्बन्धमें भी एक रहस्य है जो आसानीसे समझमें आ सकता है, यदि उसपर गम्भीरतासे विचार किया जाय। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

अब मनको परमात्माके हवाले करनेका अर्थ यह है कि शरीर-बुद्धि आदिकी हर गतिको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया जाय। दूसरे शब्दोंमें इन तीनों श्लोकोंके आदेशका पालन किया जाय।—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

साधक जानते हैं कि दीर्घकालीन साधनके बाद भी इसमें सफलता पाना आसान नहीं। जिला मेरठके एक सत्यभक्त वीतराग महात्माने अपने विषयमें कहा है—'पैंतालीस बरस हो गये हैं। फिर भी मन तो अभी-तक काबूमें आया नहीं।' मनको नियन्त्रित करनेके पश्चात् ही उसे समर्पित किया जा सकता है। यह बात बुल्लेशाह-जैसा पहुँचा हुआ भक्त ही कह सकता है—'बुल्लया, रब्ब दा पाना। एत्थों पुटना, एत्थे लाना।' (बुल्लहे, परमात्माकी प्राप्ति कोई कठिन बात नहीं। मनको यहाँसे उखाड़कर वहाँ लगा दिया। बस, हो गया काम।)

स्वामी विवेकानन्दने एक स्थानपर प्रार्थना की है—'परमात्मा! मुझे अनन्य भक्ति दो।' यह क्यों? भगवद्गीता इसका उत्तर देती है—'अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा तू मुझे जान सकता है, देख सकता है और चाहे तो तत्त्वदृष्टिसे मेरे अंदर समा सकता है।'

स्वामी विवेकानन्दने जो कुछ कहा है, उससे सम्भवतः योगी कृष्णप्रेमने शिक्षा ली है। स्वयं स्वामी विवेकानन्दके शब्दोंमें विशेष रस है। इस कारण उन्हें अपने सामने रखना चाहिये—"राजा शिकार खेलने जंगल गये। वहाँ एक संतसे उनकी भेंट हुई। दोनोंमें कुछ देर बातचीत हुई। राजा संतसे इतने प्रसन्न हुए कि उनसे कुछ भेंट स्वीकार करनेको कहने लगे। संतने उत्तर दिया—'नहीं, मुझे अपनी वर्तमान अवस्थासे पूर्ण संतोष है। ये वृक्ष मुझे फल खिलाते हैं, सुन्दर नदियाँ मुझे पानी पिलाती हैं और गुफा गोदमें सुलाती है। आप महाराज हैं; तो भी मुझे आपके किसी उपहारकी आवश्यकता नहीं।"

'मुझे पवित्र करनेके लिये ही आप कष्ट करें' राजाने कहा। 'मुझे संतोष प्रदान करनेके लिये आप मेरा उपहार स्वीकार करें। मेरे साथ राजधानीतक चलनेका अनुग्रह करें।'

संत राजाके साथ हो लिये। राजा उन्हें अपने प्रासादमें ले गये। महल हीरे, जवाहरात और अन्य बहुमूल्य वस्तुओं-से भरा था। धन और राजसत्ता हर जगह दिखायी देती थी। राजाने संतको आसन देकर कहा—'आप दो-चार क्षणके लिये यहाँ विराजिये। मैं ईश्वरसे प्रार्थना कर लूँ।'

यह कहकर राजा एक कोनेमें चले गये और लगे ईश्वरसे प्रार्थना करने—'देव! मुझे और भी धन, संतान तथा राज्य प्रदान करो।'

इसे सुनकर संत उठ खड़े हुए। वे महलसे बाहर जाने लगे। राजाने यह देखा तो वे भी उनके पीछे-पीछे गये। पास जाकर कहा—'महाराज! आपने मेरी भेंट तो स्वीकार ही नहीं की, आप जा कहाँ रहे हैं?'

संतने राजाकी ओर मुँह करके कहा—'भिखारी भिखारियोंसे भीख नहीं माँगा करता। तुम मुझे क्या दे सकते हो जब स्वयं भीख माँगते चले आ रहे हो?'

इसके पश्चात् स्वामी विवेकानन्दने वही बात कही है जो योगी कृष्णप्रेमके तत्त्वदर्शनका आधार है—'यदि परमात्मासे 'यह दो' 'वह दो' माँगते रहे तो प्रेम और दुकानदारीमें क्या अन्तर रह गया? यह प्रेमकी भाषा नहीं। प्रेमका पहला लक्षण यह है कि वह सौदा करना नहीं जानता। वह तो सदा देना ही जानता है। प्रेमी सदा देता ही रहता है।'

सेवा

[कहानी—सत्य घटनाके आधारपर]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

गोविन्दं गोकुलानन्दं वेणुवादनतत्परम् ।
राधिकारञ्जनं श्यामं वन्दे गोपालनन्दनम् ॥

सौभाग्यशालिनी सुलोचना प्रतिदिन उपर्युक्त श्लोक गुनगुनाया करती थी। विधवा मोतीबाई शर्मा जब उसके यहाँ काम-काज करने आती, तब प्रातःकालीन सुरभित वायुके झोंकेके साथ इस श्लोकको सुनकर उसे बड़ा ही आनन्द मिलता था। थोड़ा काम करनेके उपलक्ष्यमें सुलोचना मोतीबाईको सहायतार्थ अधिक पैसे नित्य दे दिया करती थी।

मोतीबाई वर्षोंसे दीवान दुर्गाशंकरके यहाँ भोजन बनाती थी और कुटुम्बके समान वे इसे मानते थे। दैवयोगसे उस राज्यके राजाको जब अंग्रेजी शासनकी ओरसे पदच्युत करके प्रयाग भेज दिया गया, तब ये भी राजाके सेवार्थ साथ गये और वहीं स्वर्गवासी हो गये। उनकी पत्नी रमा पर्देमें रहनेके कारण उसका बाहर-भीतरका सारा काम मोतीबाई ही अवैतनिक रूपसे करती थी। उसे किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होने देती थी। 'मैंने इनका अन्न-जल ग्रहण किया है, मेरे बचपनसे ही वैधव्यके दिन इन्होंने आराम देकर कटाये हैं। मैं इनके अशेष उपकारोंसे कभी उऋण नहीं हो सकती।' मनमें ऐसे विचार लिये मोतीबाई नित्य रमाका सारा कार्य पूर्वकी भाँति चित्त-मन लगाकर करती थी।

'तू क्यों उसके यहाँ मुफ्तमें काम करने जाती है ! अब उसके पास देनेको है क्या !' एक दिन मोतीबाई मार्गकी एक गलीके मोड़से मुड़ी कि सामने ही उसकी बूढ़ी सास कमला मिल गयी और इसे देखते ही क्रोधमें आ उपर्युक्त कठोर वाक्य कहने लगी। मोतीबाईने सुलोचनाके दिये हुए पैसे बताकर कहा—'माताजी ! मुझे तो रमाजी वेतन देती हैं, यह देखो, उन्होंने ही दिये हैं।' पैसे हाथमें लेकर कमला प्रसन्नतासे बोली—'मेरे पास एक बड़ा भारी शत्रु है बहू ! क्रोध···। तू तो मुझे बड़ी सुपात्र पुत्र-वधू मिली है। मैं कई बार तुझपर क्रोध करके पछताती हूँ। रमाजीका भला हो, जो वे अभी भी वेतन देती हैं।' कमला अशिक्षित ग्रामीण महिला थी, सत्संगमें रही नहीं थी। पैसेको ही सब कुछ समझकर मोतीको सदा कष्ट दिया करती थी। मोती उसमें पूज्यभाव रखकर सब सहती। इस समय भी सासको प्रसन्न रखने एवं रमाकी सेवा-जैसे धर्मको निभानेके हेतु उसे झूठ बोलनेमें दोष दिखायी नहीं दिया।

एक दिन सेवा-शुश्रूषासे कमलाको प्रसन्न करते हुए मोतीबाई कहने लगी—'पूज्य माताजी ! आपने रमाजीके वे बड़े-चढ़े दिन भी देखे हैं। इनके पति दीवानजी राज्यके माने-सन्माने धर्मात्मा सज्जन थे। आज उनके धर्म-कार्य उनकी कीर्ति बढ़ा रहे हैं। सबका सब समय समान नहीं जाता। धूप-छाँह, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख साथ-साथ चलते हैं। सेवकका परम कर्तव्य है कि जिस स्वामीका अन्न-जल खाया-पीया हो, उसकी बिगड़े दिनोंमें भी निःस्वार्थभावसे सेवा करना। आज रमाजी पर्देमें बंद हो जानेसे विवश हैं। दूसरोंका अन्न पीसकर एवं सिलाईके कपड़े सीकर बेचारी बच्चेको पाल रही है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उनकी पहले-जैसी ही सेवा-चाकरी करूँ और मेरे पास थोड़ा धन भी हो तो उनकी सहायता करूँ।'

मोतीबाईके द्वारा रमाकी करुण-कहानी सुनकर कमलाके नयनोंसे अश्रुधारा बह चली। अब उसने मोतीको रमाके यहाँ बेरोक-टोक जाने देनेका निश्चय कर लिया।

× × × ×

समय चलता रहा। सासको प्रसन्न देखकर मोतीको दूसरा प्रसंग सुनानेका साहस हो आया। एक बार सासकी चरण-चप्पी करते-करते वह बोली—'माताजी ! हमारा जीवन रीता बीत रहा है। कालरूपी बाज मस्तकपर घूम रहा है। मकड़ी ताना-बाना बुनकर जालके भीतर बैठी-बैठी मक्खी-मच्छरको हड़पनेकी ताकमें रहती है। इसी

प्रकार काल बड़ा बलवान् है । हरि-भजन ही सब शास्त्रोंका सार है । सब जंजाल छोड़कर हमको हरिभजन करते रहना चाहिये । सुलोचनाजीने निम्नलिखित श्लोक मुझे बताया है । मैंने रमाजीको सिखाया है । मेरे साथ आप भी इसका सुमिरन करती रहें—

गोविन्दं गोकुलानन्दं वेणुवादनतत्परम् ।
राधिकारञ्जनं श्यामं वन्दे गोपालनन्दनम् ॥

कमलाने श्लोक याद कर लिया और जप करने लगी। एक दिन जपते-जपते हर्षसहित कमला बोल उठी—'मोती, यो नाम तो घणो प्यारो लागे री !' मोतीबाई मनमें प्रसन्न होकर कहने लगी—'रटे जाइये माताजी ! अभी तो और भी प्यारो लागेगो—आपसे छूटेगो नहीं—भव-बन्धन ही आपके छूट जायँगे ।'

तोतली बोलीसे कमलाद्वारा अशुद्ध पाठ होना सुनकर भी मोतीने उसे सुधारनेका प्रयत्न इस विचारसे नहीं किया कि कहीं सासूजी कुपित होकर जप करना ही बंद कर दें । अतः उसने रामचरितमानसकी यह चौपाई स्मरण करके संतोष कर लिया कि—

'उलटा नाम जपत जग जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥'

(२)

धूलि-धूसरित रमा-पुत्र सोहनको जब मोतीबाई निहारती, तब उसका हर्षसे रोम-रोम खिल उठता था । सोहनके पूर्वजन्मके संस्कार उत्तम थे, यहाँ भी उत्तम संस्कारोंमें पला था । भारतकी पुनीत माटीमें वह शनैः-शनैः बड़ा हो शिक्षित हुआ । पिताका रुतबा, फिर माताकी दीन-दशा, संकटमें बुआ मोतीबाईका निःस्वार्थ भावसे साथ देना—ये लंबी कहानियाँ सुनते-सुनते वह एक कर्त्तव्यशीलताकी दशामें भावविभोर हो जाया करता था । उसने मन-ही-मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि "नौकरी मिलते ही प्रथम रेशमी गादी-तकिये बनवाकर उनपर माताजी और बुआ मोतीबाईको बैठाये रखकर घर-बाहरका सारा काम मैं करूँगा—और गुरुमन्त्र 'श्रीकृष्णः शरणं मम' का निरन्तर मनमें जप करता रहूँगा ।"

परंतु सोहनकी इच्छा पूरी नहीं होने पायी । एक सप्ताहके अन्तरसे उसकी माता रमा और प्यारी धर्म-बुआका देहान्त हो गया । इनके वियोग-दुःखसे सोहनको संसार सूना जान पड़ने लगा । किंतु धीरे-धीरे दुःख भूलते-भूलते उसने इसी सेवा-परम्परामें सेवाका एक पुनीत मार्ग खोज निकाला ।

मोतीबाईकी सास कमला अत्यन्त वृद्ध हो जानेसे दुःख पा रही थी । पड़ोसी दयावश उसे अन्न-जल देते थे । उसके प्राण किसी भाँति अस्थि-पञ्जरमें टिके हुए थे । सोहनने यह सब सुना, देखा । बहुत दुःख हुआ उसे । उसने कमलाको अपने घर लाकर उसकी सभी भाँतिसे सेवा-शुश्रूषा करना आरम्भ कर दिया । उसने कमलाके जर्जरित तनमें माता-पिता, बुआ मोती और दीनबन्धु भगवान्की मूर्तियोंके दर्शन किये । वह कमलाकी तबतक तन-मन-धनसे सेवा करता रहा, जबतक कि कमलाके प्राण-पखेरू उड़ न गये । पड़ोसियोंमें एवं दूर-दूरतक ग्राम-नगरोंमें उसकी सेवा-भावनाकी भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी, परंतु वह प्रशंसा सुननेसे सदा दूर ही रहता था ।

सोहन नित्यप्रति ब्राह्ममुहूर्त्तमें शय्या त्यागकर श्रीभगवद्भजन तो करता ही, पर भगवान्से हाथ जोड़कर यह भी प्रार्थना करता कि 'दयामय भगवान् ! विश्वभरमें कोई भी प्राणी दुखी न हों, सब धर्माचरण करें और धर्मकी कमाईसे सुख भोगें । इस दासको आप प्राणिमात्रकी सेवा करनेका अवसर दें ।'

इस प्रकार सोहनका सेवा-भाव इतना दृढ़ हो गया कि गिरतेको उठाना, कष्टीका कष्ट मिटाना, भूखे-प्यासेको अन्न-जल पहुँचाना, भूले-भटकेको राह बताना—उसका नित्यका काम हो गया । जितना वह धर्ममय अर्थोपार्जन करता, उसमेंसे आधा भाग सेवाके विविध कार्योंमें व्यय कर देता था । इतना ही नहीं, वह दूसरोंसे भी याचनाकर अन्न-वस्त्र, रुपया-पैसा एकत्र कर दीन-हीनजनोंमें वितरण करता था । इस प्रकार उसका सारा जीवन परोपकार करते-करते व्यतीत हुआ ।

परमार्थकी पगडंडियाँ

जिसको वास्तविक रस कहते हैं, जिसका नाम रस है, वह रस केवल और केवल भगवान् हैं। जगत्में जितने भी रस माने गये हैं, भोजनके रस, काव्यके रस—इन सभी अन्यान्य प्रकारके रसोंका रस-शास्त्रोंमें बड़ा भेद किया गया है। हमारे यहाँ भी और पाश्चात्य विद्वानोंने भी इसपर बड़ा विचार किया है, पर इस रसका जो मूल स्रोत है, मूल आकर है, खान है, वह है—भगवान्। 'रसो वै सः'—रस वही हैं, और कोई नहीं। उनको छोड़कर हम जगत्में जिन रसोंको रस नाम देते हैं—वे कोई कुरस, कोई विरस और कोई अरस हैं। कुरस—कुत्सित रस, विरस—विपरीत रस और अरस—रसहीनता। अतएव जगत्में जितने भी आनन्द हैं, जितने भी सुख हैं, उन सभी सुखोंका, आनन्दका मूल तो एक भगवान् हैं। भगवान् आनन्दस्वरूप हैं और इन भगवान्के आनन्दस्वरूपको छोड़कर जितने भी आनन्द हैं, आह्लाद हैं, रस हैं, वे सब-के-सब रस नहीं हैं—कुरस हैं, विरस हैं, अरस हैं। जितने भी विषयप्रेमी लोग हैं, विषयासक्त हमलोग भी, कभी रसका आस्वादन कर पाते ही नहीं। रसके नामपर हम कुरस, विरस और अरसमें ही रमे रह जाते हैं एवं उसीको हम रस मान लेते हैं। हमारी बुद्धि विपरीत हो रही है। इस तमसाच्छन्न विपरीत बुद्धिके कारण हम भगवान्की ओर आकर्षित न होकर जगत्के भोगोंकी ओर आकर्षित होते हैं, जिनमें रस है ही नहीं, उन्हींमें रचे-पचे रहते हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है।

× × ×

भगवान्का प्रेम प्राप्त करना हो, सांनिध्य प्राप्त करना हो, उनको हृदयमें बसाना हो तो हृदयको खाली करो—यही 'गोपीभाव' प्राप्त करनेकी साधना है। बड़ी सुन्दर साधना है—हृदयको खाली करो, जिसमें वे स्वतन्त्रताके साथ बिना किसी संकोचके, हिचकके, बाधाके अपना स्वर बजा सकें। कहीं गाँठ रह गयी बीचमें और उसे छुड़ाया नहीं, तो उनके जो स्वर हैं, उन स्वरोंमें रस नहीं आयगा, बाधा आ जायगी। गोपी बनना हो, अर्थात् भगवान्का प्रेमी भक्त बनना हो, तो एक ही उपाय है कि जगत्को—इस जगत्के तथा परलोकके भोगोंको हृदयसे निकाल दो।

× × ×

कहनेका तात्पर्य यही है कि भगवान् जो रसका आस्वादन करते हैं, यह रस किसी दूसरेका रस नहीं है; यह रस किसी भक्तके अपने हृदयका रस नहीं है; वह तो, जिस भक्तने अपने हृदयको सर्वथा खाली कर दिया हो—भगवान्के रसके लिये, उस भक्तके हृदयमें भगवान् अपना ही रस उँड़ेल देते हैं। प्रेममय भगवान्, प्रेमास्पद भगवान्, प्रेष्ठ भगवान्, प्रियतम भगवान्, रसमय भगवान् अपने स्वरूपभूत रसको उस भक्तके हृदयमें भर देते हैं, भर क्यों देते हैं? यदि केवल रस भरा हुआ हो और रसका कोई आस्वादन करनेवाला न हो, तब वह रस व्यर्थ है। जिस रसका कोई उपयोग न हो, जहाँ वह रस अपने ही स्वरूपमें प्रतिष्ठित है, वहाँ वह उनके आस्वादनकी वस्तु नहीं है, उसका न तो कोई उपभोक्ता है, न उपभोग्य ही है; वहाँ वह अपने स्वरूपमें नित्य प्रतिष्ठित है। तथापि भगवान् स्वयं उस रसका आस्वादन करते हैं।

× × ×

भगवान्की जब यह इच्छा होती है कि स्वयं अपने रसका अपने ही पान करें, अपनी लीलामें अपने-आप ही लीलायमान हों, अपने आनन्दसे अपने-आप ही आनन्द-लाभ करें,—तब वे क्या करते हैं?

उन भक्तोंके हृदयमें, जिनमें अहंता-ममता-कामना-वासना-लालसा, इच्छा-स्पृहा-आसक्ति आदि किसी प्रकारकी कोई भी चीज नहीं रह जाती, जिनका हृदय सर्वथा—सर्वदा भगवान्के रसका भण्डार बननेके लिये खाली हो जाता है, उन हृदयोंको स्वयं भगवान् अपने परम मधुर दिव्य रससे भर देते हैं—परिपूर्ण कर देते हैं एवं स्वयं फिर उस रसके पूर्ण उपभोक्ता बन जाते हैं। —

प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय। राजा-परजा जेहि रुचै, सीस देहि लै जाय॥

प्रेम न किसी बाजारमें बिकता है, न उसकी कोई हाट लगती है। न वह किसी शास्त्रसे मिलता है, न वह किसी संतसे मिलता है। प्रेम मिलता है—केवल प्रेमस्वरूप भगवान्से, प्रेम मिलता है—प्रेमसे तथा प्रेम मिलता है—प्रेमकी चाहसे। जब यह प्रेम हृदयमें आयेगा तो एक विचित्र रसकी अनुभूति होगी। वह अनुभूति क्या होगी? यह जगत् फीका लगने लगेगा। नीरस—इसका अस्तित्व लुप्त हो जायगा। बस, यही कसौटी है।

× × ×

जिसके हृदयमें ज्यों-का-त्यों जगत्का आकर्षण बना है और वह यदि अपनेको भगवान्का प्रेमी समझता है तो वह भ्रममें है। जैसे सूर्योदय होनेपर पटवीजन (जुगुनू) की रोशनीका महत्त्व नहीं रहता और जैसे सूर्योदय होनेपर रात्रि नहीं रहती, वैसे ही जब भगवान्का प्रेम, भगवद्-रस हृदयमें आ जाता है तो जगत्का आकर्षण फीका लगने लगता है। फीका लगनेके बाद बिना हटाये, बिना प्रयासके यह जगत् सर्वथा हट जाता है। जगत्का यह दृश्य-प्रपञ्च बिल्कुल ही नहीं रह जाता, एकदम विलुप्त हो जाता है और रह जाते हैं केवल और केवल भगवान् एवं उनका लहराता हुआ प्रेम-समुद्र। जहाँ ऐसी स्थिति होती है, वहीं उस समुद्रमें आकर श्यामसुन्दर लीला करते हैं, अवगाहन करते हैं। यही प्रेमी और प्रेमास्पदका 'नित्य रास' है, नित्य विहार है। यह नित्य चलता है; इसमें जो भी आना चाहे, सभी आ सकते हैं; पर उसके लिये त्याग करना पड़ेगा। यदि यह प्रेम प्राप्त करना है तो हृदयको सर्वथा खाली कीजिये। प्रेम मिल जायगा।

अपने अन्तःकरणको सर्वथा और सर्वदा खाली करना है। इसमें जरा-सी भी यदि कोई दूसरी चीज रहती है, तबतक भगवान् अपना रस उँड़ेलते नहीं, रस उसमें भरते नहीं। तो खाली करनेका अर्थ क्या है? इसको मोटी भाषामें कहें—अहंता, ममता, कामना, वासना, स्पृहा, लालसा, इच्छा, आसक्ति इत्यादि—सबको भगवान्के साथ जोड़ देना है। ये भावनाएँ अपने आपमें दूषित नहीं हैं; दूषित है—इनका भोग-सम्पर्क। भगवान्से प्रेमकी इच्छा दूषित नहीं है; भोगकी इच्छा दूषित है।

वही इच्छा, वही कामना यदि भगवान्के प्रेमकी है तो ऋषि-मुनि-वाञ्छनीय है और यदि भोगकी है तो भले वह इन्द्रका पद हो, त्याज्य है। जहाँपर भोगासक्ति है, भोग-वासना है, भोग-कामना है, भोग-इच्छा है—वहाँ भगवान्का रस नहीं आता। और चीजें आ सकती हैं, भगवान्का रस कदापि नहीं आ सकता। भगवान्के रसके लिये तो गोपी बनना होगा, केवल 'श्रीकृष्णमानस' बनना पड़ेगा।

× × ×

एकान्त एवं अनन्य भावसे, नित्य अबाध गतिसे उन नित्य सुन्दर, नित्य मधुर भगवान्को अंदर भरो। बार-बार याद करते-करते जितने-जितने वे अंदर भरते जायँगे, जितनी-जितनी उन्हें अंदर भरनेकी अपने मनकी उत्कण्ठाको, मनकी इच्छाको, अपनी चाहको हम तीव्र बनायेंगे, उतने-

उतने वे जल्दी हृदयमें भरेंगे। यदि हम लापरवाही करेंगे तो जगत् बाहर निकलेगा नहीं। ये भगवान्—जो बुलाना चाहता है, उसके तो पीछे-पीछे भागते हैं और जो नहीं बुलाना चाहता, उसके पास फटकते ही नहीं। अतः परम सुन्दर, परम मधुर भगवान्‌को अंदर भरो, जगत् निकल जायगा। जगत् तो पोला है, भगवान् कूटस्थ होते हैं। भगवान् भरे कि जगत्‌को निकला समझो। हृदय खाली हो गया तो ये सुन्दर मधुर भगवान् अपना रस, अपना प्रेम हृदयमें भर देंगे।

× × ×

भगवान् जरा भी दूर नहीं हैं। जो अपनेको सदा भगवान्‌के समीप समझता है तथा उनकी समीपताका सदा अनुभव करता है, उससे भगवान् कभी दूर नहीं हो सकते। वे सदा उसके हृदयमें बसे रहते हैं, उसके आस-पास रात-दिन रहकर उसे सुखी करते रहते हैं और स्वयं लोभीके धनकी तरह निरन्तर उसे अपने हृदयमें बसाये रखते हैं तथा उसके पवित्र प्रेम-रससुधाका रसास्वादन करते रहते हैं—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥'

भगवान्‌की अहैतुकी कृपाका, उनके सहज सौहार्दका, उनके निर्मल प्रेमका, उनकी अप्रतिम प्रीतिका सदा अनुभव करते रहना चाहिये। वे सदा समीप हैं, इसका भी अनुभव करते रहना चाहिये।

केवल मात्र श्रीभगवान्‌में ही प्रेम करना चाहिये। भगवान् सदा सर्वत्र विद्यमान हैं। उनको सदा समीप समझकर सारे कार्य, उनका स्मरण करते हुए, उन्हींकी प्रीतिके लिये करने चाहिये। जन्मके पहले वे साथ थे और मरनेके बाद भी वे साथ रहेंगे। मनुष्यका शरीर क्षणभङ्गुर, विनाशी और कर्मजनित पाञ्चभौतिक है; वह तो नष्ट होगा ही। अतः उसमेंसे आसक्ति हटाकर नित्य अविनाशी परम सच्चिदानन्दघन भगवान्‌में ही आसक्ति-ममता करनी चाहिये। उन्हींको जीवनका परम लक्ष्य मानना और जानना चाहिये। हम सब हैं तो उन्हींके, पर भूले हुए हैं। अतएव उस नित्य सम्बन्धको स्मरण करके उन्हींके हो जाना चाहिये और इसमें हमें परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करनी चाहिये।

भगवान्‌की मधुर स्मृति ही हमारा जीवन बन जाय—संसारमें किसी भी प्राणी-पदार्थ, परिस्थितिमें हमारी ममता-आसक्ति न रहे। सारी ममता-आसक्ति एकमात्र भगवच्चरणोंमें ही जाकर केन्द्रित और स्थिर हो जाय।

× × ×

भगवान्‌में विश्वास करनेवाले व्यक्तिको भगवान्‌के प्रत्येक मङ्गलविधानमें परम प्रसन्न रहना चाहिये। हम कहीं रहें, कैसे भी रहें, हैं भगवान्‌की 'संनिधि'में ही, बस, भगवान्‌का स्मरण होता रहे। एक भक्तने कहा है—

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥

अतएव हमलोगोंको सदा-सर्वदा भगवान्‌के चरणकमलोंका स्मरण करते हुए प्रसन्न रहना चाहिये। शरीर कहीं भी रहे। मन भगवान्‌में बसा रहे, भगवान् हमारे मनमें बसे रहें। शरीरकी तो स्थिति प्रारब्धानुसार होगी; सो जहाँ जैसा हो, होता रहे। प्रभुकी प्रीति तथा कृपा सदा अखण्ड बनी रहे।

कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँडियो कमठ अंडकी नाँई ॥

हमारा पवित्र जीवन प्रभुमय हो जाय। संसारकी सारी कामना-वासना हमारे हृदयसे बिल्कुल निकल जाय। संसारासक्तिका लेश भी हममें न रहे। हमारे मनकी प्रत्येक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथा स्थूल-से-स्थूल वृत्ति निरन्तर भगवान्‌में ही लगी रहे। हमारे मन-इन्द्रियकी प्रत्येक चेष्टा केवल और केवल भगवान्‌के लिये ही हो और यदि भगवान्‌की कृपापर पूर्ण विश्वास करके हम अपनेको बिना किसी शर्तके उनके चरणोंपर लुटा दें—तो ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं है। जब महापापी भी भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे तुरंत साधु, धर्मात्मा, शाश्वती शान्तिका निश्चित अधिकारी और भगवान्‌का कभी न नष्ट होनेवाला 'भक्त' बन सकता है, तब हमलोग क्यों नहीं बन सकते? हमारा निश्चय सम्यक् होना चाहिये। अर्थात् भगवान्‌की अहैतुकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके हमें अनन्यभावसे उनके शरण हो जाना चाहिये। ऐसा होनेपर निश्चय ही हमारा कार्य सफल हो जायगा।

भगवान् मङ्गलमय हैं। यदि हम हृदयसे उनसे प्रेम चाहेंगे तो वे क्यों नहीं देंगे?

श्रीभगवान्‌का स्मरण-चिन्तन निरन्तर बना रहे और वह केवल प्रेमजनित हो, उसमें किसी भी प्रकारकी विषयासक्ति, भोग-कामना या वासनाका लेश न हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये और भगवान्‌से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि आपका प्रेमजनित अनन्य स्मरण होता रहे। आपमें ही मेरी अनन्य ममता केवल पवित्रतम प्रेमके कारण हो जाय। संसारमें, शरीरके लिये जो कुछ भी होना हो, होता रहे, मैं उसकी ओरसे सर्वथा उदासीन रहूँ; जीवन-मरण सभीमें समता बनी रहे। सारी ममता केवल आपमें ही आकर केन्द्रित हो जाय—

'तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।'

× × ×

भगवान्‌को जो जितना चाहता है, भगवान् उसको उतना ही चाहते हैं। परंतु प्रेमीके प्रेमका बदला तो वे चुका नहीं सकते; उसके तो ऋणी ही रहते हैं। भगवान् पात्रता नहीं देखते; वे तो हृदयके पवित्र भाव तथा एकान्त अनन्य चाहको ही देखते हैं।

मेरा तो यही निवेदन है कि नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर मङ्गल स्मरणमें लगे रहो। संसारका कोई पदार्थ, कोई अवस्था, कोई स्थिति, कोई प्राणी, कोई सुख-दुःख—तुम्हें इस स्मृति-सुख-सागरसे न निकाल सके। भगवान्‌की मधुर मङ्गल स्मृति हमारा जीवन बन जाय। मछलीका 'जीवन' जल है—इसी प्रकार भगवान्‌की परम मधुर मङ्गलमयी स्मृति हमारा 'जीवन' हो।

सदा-सर्वदा भगवान्‌की अनन्त सहज कृपाका अनुभव करना चाहिये। वह कृपा 'हमारी सम्पत्ति' है—ऐसा दृढ़ निश्चय रखना चाहिये। कभी निराश, उदास, विषादग्रस्त नहीं होना चाहिये। भगवान् सदा-सर्वत्र तुम्हारे पास हैं, यह अनुभव करते रहना चाहिये। मनमें स्वरूप, जीभपर नाम, हृदयमें मधुर स्मृति—सर्वदा, सब ओर उनकी संनिधिका अनुभव करना चाहिये। विषय-विराग तो फिर आप ही होगा।

सदा-सर्वदा प्रभुका मधुर मङ्गलमय स्मरण करते रहना। भगवान् श्रीकृष्णके मधुर स्मरणके समान अन्य कोई भी लाभ नहीं है। श्रीकृष्णके स्मरणसे उनकी मधुर रसमयी प्रेम-सेवाका परम सौभाग्य प्राप्त होता है। अनन्य ममतायुक्त, काम-लेश-गन्ध-कल्पना-हीन, निष्कपट, सुनिर्मल, समुज्ज्वल, प्रगाढ़ प्रीतिका नाम 'प्रेम' है। इस प्रेमकी प्राप्तिके लिये नित्य-निरन्तर श्रीकृष्णका भजन तथा इनसे प्रार्थना करनी चाहिये।

कामके पत्र

(१)

जगत् और जगत्के भोगोंमें सुख है ही नहीं

प्रिय भाई ! सप्रेम हरिस्मरण । तुम्हारा पत्र मिला । तुम्हारा लिखना बहुत ठीक है, पर भैया ! यह जगत् बना ही है अनित्य अपूर्ण उपादानोंसे । प्रकृतिके विक्षोभ या अशान्तिसे ही इसकी रचना हुई है; अतएव प्रतिकूलता, अभाव, रोग-शोक, बिपत्ति, दुःख आदि अशान्तिके कारण जगत्के स्वरूपगत हैं । सम्राट् हो या भिखारी—जगत्से न किसीको शान्ति-सुख मिला है, न मिल सकता है । एक अभाव, एक दुःख दूर होगा तो तत्काल दूसरे दस-पाँच आकर खड़े हो जायँगे । सुख-शान्तिका उपाय तो एक ही है—जिस जीवनको जगत्में झोंक रक्खा है, उसे भगवान्के अर्पण कर दिया जाय । भगवान्में शान्ति-सुख, सौन्दर्य-माधुर्य, पूर्णता-अविनाशिता आदि स्वरूपगत है और नित्य पूर्ण है । भगवान्से प्रेम करो; हटा लो आसक्ति-ममता, जगत्के दुःखपरिणामी भोगोंसे; मल-मूत्र, अस्थि-मांसके पिण्ड इस शरीरसे निकाल दो अहंताको । अनित्य-असत्को छोड़कर नित्य-सत् भगवान्से सम्बन्ध जोड़ लो; जो जुड़ा ही है, केवल पर्दा हटाना है । तभी सुख-शान्ति मिलेगी । अन्यथा खोज करते रहो जगत्के भोगोंमें शान्तिको—धन-सम्पत्ति-मान-प्रतिष्ठा, पद-अधिकार, पुत्र-मित्र आदिमें सुखको—सदा निराश ही रहोगे; वैसे ही, जैसे अन्धकारसे प्रकाशकी आशा व्यर्थ होती है, संतप्त बालूमेंसे कभी तैल नहीं निकलता । सोचकर—दृष्टि फैलाकर देखो, जगत्में जगत्के प्राणि-पदार्थ-परिस्थितियोंमें कौन सुखी है ? अरे, दूसरोंकी बात छोड़ो—पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णको सखारूपमें, परम आत्मीय-रूपमें पाया, पर सारा जीवन बीता दुःख-विपत्तिमें ही । पर वह दुःख-विपत्ति भगवान्को मिलानेवाली हुई, इसीसे कुन्तीदेवीने भगवान्से विपत्तियोंका ही वरदान माँगा !

भैया ! हमलोग जो यहाँ सुख खोज रहे हैं; यह यथार्थमें हमारा प्रमाद है । इस मिथ्या आशा-आस्थाको छोड़कर—यहाँ जो कुछ होना है, उसे होने दो और भगवान्के बननेकी कोशिश करो । इसीमें कल्याण है । शेष भगवत्कृपा ।

(२)

विपत्ति भगवान्का वरदान

सम्मान्य महोदय ! सादर हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । आपके विचार बहुत सुन्दर हैं । भगवान्को हम इसीलिये नहीं पाते कि हम उन्हें वास्तवमें चाहते ही नहीं हैं । संसारकी नगण्य तथा तुच्छ वस्तुओंके पाने-भोगनेमें ही मस्त रहते हैं । उनके न मिलने या चले जानेपर बड़े बेचैन होते हैं, रोते-कराहते हैं, पर भगवान्के लिये हम कब बेचैन होते हैं ? हमारे प्राण कब उनके लिये हाहाकार कर रो उठते हैं । नहीं तो, नित्य सत्य सर्वत्र व्याप्त आत्मस्वरूप भगवान्के मिलनेमें देर क्यों होती ? भगवान् प्रारब्धसे मिलनेवाली कर्मजनित अनित्य वस्तु नहीं हैं; वे तो नित्य हैं और केवल चाहसे ही मिलते हैं । हम यदि भगवान्को भजते भी हैं तो अनित्य भोग-सुखोंके लिये ही । जबतक भोग-विलास, धन-सम्पत्ति रहती है, मनकी चाह सफल होती रहती है, तबतक भगवान् बहुत अच्छे हैं—दयालु हैं । जरा भी त्रुटि हुई कि फिर या तो भगवान्को कोसते हैं या उनके अस्तित्वपर ही संदेह करने लगते हैं । दूसरोंके विलासमय जीवनको देखते हैं तो ललचाते हैं—भगवान्का भजन करनेपर भी हम उससे वञ्चित क्यों हैं ? इसके लिये भगवान्की कृपापर, उनकी सत्तापर अविश्वास करने लगते हैं । जरा गहराईसे विचार कर देखिये—हम भगवान्को चाहते हैं या भोगोंको । ठीक दिखायी देगा, हम भगवान्को नहीं चाहते, भोगोंको चाहते हैं । फिर हम भगवान्को कैसे पायें ?

अवश्य ही भगवान् बड़े दयालु हैं; हम जब क्षणिक तथा दुःखपरिणामी भोगोंको पाकर होश-हवास खो बैठते हैं, तब भगवान् विपत्ति-वरदान भेजते हैं । जोरकी चोट करते हैं और फिर उस चोटमें उनका स्पर्श प्राप्त होनेपर हमारे होश ठिकाने आते हैं । आप अपने अबतकके जीवनपर ध्यान देकर देखिये—सचमुच आपके जीवनमें ऐसा ही हुआ है । इस समय दयामय भगवान् आपके माया-मोह, ममता-आसक्तिको मिटानेका पवित्र कार्य कर रहे हैं—इस विपत्तिको भेजकर, इस प्रकार गालपर जोरकी चपत लगाकर । इसे भगवान्का मङ्गल-वरदान समझिये ।

भीतरका सारा कूड़ा-कचरा जलकर भस्म हो जायगा और फिर उस शुद्ध अन्तर्देशमें भगवान् आ विराजेंगे। आपको इसका आभास हो रहा है—यह भगवत्कृपा ही है। आप निश्चिन्त मनसे भगवान्‌के प्रति अपनेको बेशर्त समर्पण कर दीजिये। उनके हरेक विधानकी मङ्गलमयता-पर विश्वास करके निश्चितरूपसे निर्भर हो जाइये। निश्चय समझिये, भगवान् आपको अपना रहे हैं, समीप-से-समीप खींचे लिये जा रहे हैं। आपका परम कल्याण, आपको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति भगवत्कृपासे निश्चय ही होगी। इसपर दृढ़ विश्वास कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

(३)

सबमें एक ही आत्मा समझकर सबका हित करना है

प्रिय महोदय ! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। देशमें जो धर्मके नामपर भयानक विध्वंसक हिंसाकाण्ड हो रहे हैं, इससे आपको दुःख होता है, सो ठीक ही है। प्रत्येक विचारशील पुरुषको दुःख होगा। वास्तवमें अध्यात्म-जगत्‌का शिरोमणि भारत—जो प्रत्येक वस्तु-परिस्थितिमें आत्मा या ईश्वरको देखकर आत्मकल्याणके कार्य करता था—आज पथभ्रष्ट हो रहा है। सच्ची बात तो यह है कि हम पहले आत्मा हैं फिर मनुष्य हैं, फिर हिंदू-मुसल्मान-ईसाई आदि हैं, फिर अमुक देशवासी हैं, फिर अमुक जातिके हैं। अमुक प्रदेशके हैं, अमुक परिवारके हैं, फिर हम अमुक व्यक्ति हैं। अतएव जिसमें आत्मापर आघात होता हो, वैसा कोई भी कार्य कभी भी व्यक्तिगत स्थितिसे लेकर मनुष्यकी स्थितितक, किसीमें भी नहीं करना चाहिये। मानव-पशु-पक्षी, हिंदू-मुसल्मान-ईसाई, भारतीय-पाश्चात्यदेशीय, मालिक-मजदूर, ब्राह्मण-चाण्डाल, पंजाबी-बंगाली, सगे-सम्बन्धी, पिता-पुत्र, पति-पत्नी—सभीमें एक आत्मा है। नाटकके पात्रकी भाँति अपने जिम्मेका काम करना है—सावधानीके साथ भलीभाँति, पर कहीं भी, किसीमें भी राग-द्वेष न रहे। जिसमें सबका हित हो, सब सुखी हों, ऐसा ही कार्य करना चाहिये। पर जब मनुष्यका 'स्व' अत्यन्त सीमित हो जाता है, तब वह छोटे-छोटे स्वार्थमें सीमित होकर अपनी भलाई समझकर ऐसे-ऐसे कार्य करता है, जिससे न उसका भला होता है, न दूसरे किसीका। वरं दुःख-अशान्ति बढ़ते हैं, जीवन अस्त-व्यस्त तथा संत्रस्त रहता है, पापमें ही कर्तव्य-बुद्धि एवं गौरव-बुद्धि होनेके कारण पापसे छूटनेकी कभी इच्छा ही नहीं होती और नये-नये पाप बढ़ते रहते हैं। अशान्तिमें ही मृत्यु होती है और मृत्युके बाद नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। पर आज तो कूएँ भाँग पड़ी है। विद्वान्-नेता, उपदेशक-शासक, आचार्य-विद्यार्थी, धनी-मजदूर प्रायः सभी मोहजनित सीमित स्वार्थवश इसी ओर जा रहे हैं। पता नहीं, क्या परिणाम होगा। जो बचे रह सकें, उन्हें बचे रहकर तथा सम्भव हो तो भगवत्कृपा-का आश्रय लेकर फैलते हुए विष-प्रवाहको रोकनेका यथा-साध्य प्रयत्न करना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

पतिका धर्म

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपने जो कुछ लिखा उसका उत्तर यह है कि पत्नीके लिये पातिव्रतधर्म जैसे पालनीय है, वैसे ही पतिका भी एकपत्नी-व्रत अवश्य आचरणीय है। पुरुष जो स्त्रियोंका धर्म बताते हैं, उन्हें धर्मपर आरूढ़ देखना चाहते हैं, सो तो उचित ही है। पुरुषका धर्म न देखकर स्त्रीको अपने धर्मका अवश्य पालन करना चाहिये। इसीमें उसका महत्त्व है। परंतु पुरुषोंको भी केवल परोपदेश करनेमें पण्डित न रहकर स्वयं धर्मका आचरण करना चाहिये। रामकी भाँति 'जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी।' एकपत्नीव्रती रहना तथा जगत्‌की स्त्री-मात्रको या तो माता जगदम्बाका रूप—'**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्।**' (दुर्गा० ११। ६) मानना चाहिये या उम्रके अनुसार माता, बहिन तथा कन्या समझना चाहिये। तभी पुरुष स्त्रियोंको भी ठीक उपदेश देने और सुपथपर चलानेके अधिकारी हो सकते हैं। आप कृपया मेरे इस निवेदनपर ध्यान दीजियेगा। आपकी सुलक्षणा धर्मपत्नी बड़े नियम-संयमसे रहती हैं, आपकी सब प्रकारसे सेवा करती हैं, पर कभी-कभी नम्रताके साथ आपको जीवनमें सदाचारकी रक्षाके लिये समझाती हैं, सो यह तो आपका सौभाग्य है, जो आपको ऐसी पत्नी मिली है। उनकी बातको बुरा न मानकर उसका आदर करना

तथा तदनुसार आचरण करना चाहिये। पुरुषके लिये पत्नीके समान मित्र और कोई नहीं है। उन्हें आप मित्र मानिये। शेष भगवत्कृपा।

(५)

भगवान्‌को गुरु बनाइये

सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिले बहुत दिन हो गये। मैं उत्तर नहीं लिख सका, क्षमा कीजियेगा। मेरे प्रति आपकी जो सद्भावना है, उसके लिये तो मैं आपका कृतज्ञ हूँ, परंतु आपने अपने लंबे पत्रमें बहुत-सी बातें ऐसी लिखी हैं, जो वास्तविक नहीं हैं।

'गीताप्रेस' और 'कल्याण' का प्रारम्भ और संचालन वैसे तो भगवान्‌की शक्तिसे ही हुआ और होता है; परंतु यथार्थमें देखा जाय तो इनके प्रतिष्ठापक श्रीजयदयालजी गोयन्दका हैं और गीताप्रेसका काम आगे बढ़ानेवाले हैं— श्रीघनश्यामदास जालान। ये दोनों ही इस लोकको छोड़ चुके हैं। सम्पादन-कार्यमें भी सच पूछा जाय तो हमारे श्रद्धेय पूजनीय विद्वान् लेखकोंको ही इसका श्रेय है; मैं तो केवल निमित्त बनकर श्रेय ले रहा हूँ। इसे भाग्य कहिये या मेरी चातुरी। इसके सिवा और कुछ नहीं।

आपने अपने मनमें क्या कल्पना कर रक्खी है, यह मुझे पता नहीं। आजकल तो भारतवर्षमें पचासों अवतार हो रहे हैं। वैसे ही किसीने मेरा नाम भी किसी अवतारमें ले लिया हो तो यह नाम लेनेवालेकी जिम्मेवारी है। मैं न अवतार हूँ, न भगवान् हूँ, न मुझमें कोई विशेषता है। इस विषयमें अपनी परिस्थितिका स्पष्टीकरण करनेके लिये मैंने पिछले दिनों एक पुस्तिका भी छपवायी थी।

भगवान्‌की दृष्टिसे भगवान्‌के सिवा और कुछ है ही नहीं। आत्माकी दृष्टिसे सब आत्मा है। भक्त यदि प्राणीमात्रमें भगवान् मानकर भगवान्‌की उपासना करे तो बहुत उत्तम है; पर उसमें ब्रह्मासे लेकर कीट-पतंग, नद-नदी, वृक्ष-लता सभी आ जाते हैं। पुत्रके लिये पिता-माताको, पत्नीके लिये पतिको, शिष्यके लिये गुरुको भगवान् मानकर उनकी सेवा करनेका शास्त्रका उपदेश है, वह उन लोगोंके उद्धारके लिये है। पर किसी पुत्रका पिता, किसी पत्नीका पति, किसी शिष्यका गुरु, सबके लिये भगवान् नहीं हैं। यह एक विशेष बात है, जो गृहस्थमें रहकर भी भगवत्प्राप्तिका मार्ग सुलभ करनेवाली है। मैं तो शास्त्रकी इस बातको मानता हूँ कि 'पाञ्चभौतिक शरीर और नामवाला कोई मनुष्य यदि अपनेको भगवान् कहता है और दूसरेके कहनेपर अपनेको भगवान् मान लेता है, तो वह नरकगामी होता है।'

आपने मुझे गुरु माना, सो आपकी कृपा है। पर गुरु तो वह होता है जो शिष्यके तमाम अज्ञानका हरण करके उसे भगवद्धामतक पहुँचानेका भार ले सके। इतना जिसमें गुरुत्व हो, वही गुरुके योग्य है। मेरे-जैसे लोग तो शिष्य होने लायक भी नहीं हैं, जो सद्गुरुकी प्रत्येक आज्ञाका बिना संदेहके पालन भी कर सकें। इसलिये मैं न तो आजतक किसीका गुरु बना, न मुझमें बननेकी योग्यता है और न किसीको भी मुझे गुरु मानना ही चाहिये। यों अपनी शिक्षाके लिये दत्तात्रेयजीने चील, अजगर आदिसे भी शिक्षा ग्रहणकर उनको गुरु माना है। वैसे कोई किसीको भी अपने मनमें गुरु मान ले तो यह उसका गुण है, उस गुरुका महत्त्व नहीं!

मेरा तो यह निवेदन है कि आप गुरु बनानेके चक्करमें न पड़ें। भगवान् श्रीकृष्ण सबके गुरु हैं। '**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**।' उनको गुरु मानकर और उनकी दिव्यवाणी गीताको गुरुका महान् उपदेश मानकर उसके अनुसार जीवन बनाना प्रारम्भ कर दें तो आपका निश्चय ही कल्याण हो सकता है। शान्ति-सुख बाहरसे नहीं आते। ये तो कामना-वासनाके परित्यक्त होनेपर अथवा भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर पूर्णतया विश्वास होनेपर ही आ सकते हैं। शेष भगवत्कृपा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सहायता

[एक सच्ची कहानी]

सहायता और दान, मूलरूपमें एक ही श्रेणीमें आते हैं फिर भी, सहायताका स्थान अपना ही है और उसके प्रकार भी अनेक हैं । उन अनेक प्रकारोंमें सहायताका वह प्रकार बहुत ही अच्छा और आदरणीय है, जो मनुष्यकी प्रतिष्ठा, लज्जा और आत्मनिर्भरताको समाप्त करके उसे परमुखापेक्षी और भिखमंगा नहीं बना देती; प्रत्युत उसे और भी अधिक आत्मनिर्भर और उद्यमशील बना देती है । नहीं तो, कम-से-कम वर्तमान स्थितिमें तो रहने ही देती है ।

ऐसी सहायता करनेवाला कोई दुर्लभ व्यक्ति ही ढूँढ़नेपर मिल सकता है; क्योंकि इससे विज्ञापनबाजी नहीं हो सकती, नामवरी नहीं हो सकती और आत्मयश नहीं मिल सकता ।

आज भी ऐसा व्यक्ति मिलना असम्भव नहीं है, कठिन तो पूर्वकालमें भी था । फिर सहायता लेनेवाला भी ईमानदार और नेक व्यक्ति मिलना तो और भी कठिन है और था । जरा ढूँढ़नेपर ही मिलता है और मिलता था ।

ढूँढ़नेपर मिले हुए एक ऐसे ही देने और लेनेवाले जोड़ेकी संक्षिप्त कहानी इस प्रकार है—

अमृतसरकी एक पुरानी घटना है । शाहनीवाले—यह घराना, जाने कबसे सुसभ्य, सुसंस्कृत और सुसम्पन्न चला आ रहा है । इसकी चादरपर दाग लगा कभी सुना नहीं गया ।

ब्रिटिश सम्राट् सप्तम एडवर्ड अपनी भारतयात्राके समय जब अमृतसर पधारे थे, तब इसी घरानेकी कोठीमें ठहरे थे । इसके मुखिया लाला संतरामको नगरसेठके नामसे मिलाया गया था सप्तम एडवर्डसे ।

लाला संतराम रेशमका कारोबार करते थे और रेशम उन दिनों चीन और यारकंदसे ही प्रायः आता था । ये स्वयं अपने लिये भी मँगाते थे और व्यापारियोंको आढ़तपर देनेके लिये भी । लाला संतराम बड़े ही सच्चरित्र, दयालु और गरीबनिवाज़ थे । दानशील और धर्मात्मा थे । इसलिये सभी उनकी बड़ी इज्जत करते थे । वे गरीबोंकी मजदूरीसे लाभ उठानेका यत्न कभी नहीं करते थे । रेशम दूकानपर खोलकर बेचते थे और थोक भी बेचते थे । रेशम साफ करते समय जो कचरा निकलता था, उसे एक जगह इकट्ठा करवाते जाते थे और छोटे दूकानदार, जिन्हें 'चोरहटरिये' कहा जाता था, आते थे और भाव करके उसे ले जाते थे । ऐसे दूकानदार अक्सर बहुत गरीब होते थे । वे दो-चार रुपयेका ही माल एक साथ खरीद सकते थे । बेचकर फिर लेने आ जाते ।

ऐसा ही लगा हुआ एक चोरहटरिया, जो बहुत गरीब और बूढ़ा था, एक दिन कचरा खरीदनेके लिये लाला संतरामकी दूकानपर आया । वहाँ एक ऐसे सज्जन और बैठे थे, जो इस गरीबको अच्छी तरहसे जानते थे । उन्होंने लाला संतरामको बतलाया कि 'इसकी जवान लड़कीकी शादी है और इसके पास पैसे नहीं हैं । इज्जतदार है, सफेदपोश है, किसके सामने हाथ पसारे ? फिर देगा भी तो कोई दस-बीस रुपये, अधिक-से-अधिक सौ-पचास रुपये । प्रथम तो इसको किसीके सामने हाथ पसारना ही नहीं है । बड़ा प्रतिष्ठित है, स्वाभिमानी है । गरीब है तो क्या ? गरीबोंमें क्या स्वाभिमान नहीं होता ? वरं अधिक होता है धनवानोंसे !'

लाला बोले,—'मैं क्या कर सकता हूँ ? दो-चार-दस रुपयेकी बात हो तब तो कुछ हो भी सकता है ! इतनी बड़ी गाँठ कौन उठाये ?'

कहनेवाले निराश और चुप हो गये, चले गये । कई दिन बीत गये । एक दिन उपर्युक्त चोरहटरिया बूढ़ा फिर कचरा पूछने आया सदाकी तरह । लालाने कहा—'भक्तजी ! कचरा तो नहीं है । चूहोंने हमारी एक गाँठ रेशमकी कुतर डाली है, भीतर पड़ी है, देख लीजिये ।' बूढ़ा बोला—'शाहजी ! मैं तो रुपये-दो-रुपयेका सौदा खरीदनेवाला हूँ, गाँठ कैसे खरीद सकता हूँ ?' लालाने कहा—'देखिये तो सही । कीमत तो आँकिये । मैं कौन-सा कच्चा दूकानदार हूँ और भी एक-दो आप-जैसे चोरहटरिये कीमत आँक गये हैं । चलिये, आप भी आँक डालिये । जँच गयी तो जैसा होगा, कर लिया जायगा ।'

बूढ़ा अंदर गया और उसने ऊपरसे खुली यारकंदकी पैकबंद गाँठ देखी, जिसे 'मडील' कहते थे । बूढ़ेने कहा—'शाहजी ! अगर यह सारी गाँठ ऐसे ही कटी हुई निकलनेवाली है तो एक सौ रुपये मिल सकते हैं आपको !' लाला बोले—'पाँच सौ रुपयेकी गाँठ है, आप इसका सौ रुपया आँकते हैं ।'

बूढ़ा बोला—'मुझे तो इतना ही जँचता है ।' लाला बोले—'कुछ ज्यादा नहीं ?' बूढ़ा काँपता-काँपता बोला—'जी नहीं ।'

लालाने कहा—'मुटिया बुलाकर उठा लो गाँठ ।'

बूढ़ा बोला—'शाहजी ! धीरे-धीरे रकम दूँगा, माल बेच-बेचकर ।'

लाला बोले—'ठीक है, पर देते जाना । ऐसा न हो कि मुझे तकाजा करना पड़े ।' बूढ़ा बोला—'तो रहने दीजिये लालाजी गाँठ दूकानपर ही । मैं थोड़े-थोड़े रुपये लाता रहूँगा और धीरे-धीरे गाँठ खत्म करता रहूँगा ।' लाला बोले—'यह मुश्किल है । और कोई खरीदार आ गया तो उसे ना कैसे करूँगा ? सारा-का-सारा ही लेने आ गया तो ?'

बूढ़ा गाँठ उठवाकर ले गया । गाँठ खोली तो देखा, ऊपरके ही दो-तीन बंडल कटे हुए हैं, शेष सब ठीक हैं । वह एक बंडल कटा हुआ उठाकर लालाके पास ले आया और बोला—'शाहजी ! गाँठ खोलकर मैंने देखी है । केवल ऊपरके ही तीन-चार बंडल खराब हैं; वे भी कैंची लगे हुए हैं, चूहोंके द्वारा काटे हुए नहीं ।'

लाला बोले—'भक्तजी ! अब जो कुछ है आपका है । खराब है तो, अच्छा है तो । यह तो ज्यादा खराब नहीं निकला आपके कहे मुताबिक । लेकिन यदि सारा ही खराब निकल आता तो मैं क्या लौटा लेता ? आपको रुपये देने ही पड़ते । जाइये, जो है आपका है ।'

बूढ़ा शुक्र करता हुआ अपने स्थानपर चला गया और पूरे पाँच सौ रुपये उसने उस सारे बंडलोंके वसूल किये बाजारसे । सौ रुपये लालाको दे दिये और शेषसे अपनी लड़कीका विवाह रचा दिया ।

कहनेकी जरूरत नहीं कि रेशमपर कैंची खुद लालाने ही चलायी थी, सहायताका एक बहाना बनानेके लिये । इसको कहते हैं—'सहायता ।' न तो लेनेवालेकी आँखें नीची हों और न उसे माँगनेका सवाल पड़े ।—गुरांदित्ता खन्ना

(२)

सच्चा धर्म

मामूली-सी बातको लेकर शहरके एक भागमें दंगा हो गया । हिंदुओंका एक शव श्मशान ले जाया जा रहा था । बूढ़ा था, इसलिये बाजेकी व्यवस्था साथ थी । रास्तेमें एक छोटी-सी मस्जिद पड़ती थी । शवयात्रावालोंको पता लगते ही उन्होंने बाजा बंद करवा दिया, पर मस्जिद दस-पंद्रह हाथ दूर ही रह गयी थी । जुलूस चुपचाप जा रहा था । इतनेमें मस्जिदके बगलकी एक गलीसे कुछ लोगोंका एक झुंड निकला । सबके हाथोंमें पत्थर थे और वे फेंकने लगे शवयात्रियोंपर । भगदड़ मच गयी । अर्थीको छोड़कर लोग भाग गये । सिर्फ दो-तीन आदमी रहे । उनको काफी चोट लगी । अर्थीके शवका कपड़ा फाड़ डाला गया । इसी बीच बगलकी हिंदू बस्तीसे लोग जोशमें भरे आ गये । मस्जिदवालोंको मार भगाया । दंगा शुरू हो गया । बात फैली—गुंडोंने काम शुरू किया । दूकानें लूटी जाने लगीं । आग लगायी जाने लगी !

दूरकी एक गलीमें हिंदुओंके ही मकान ज्यादा थे । दो-चार मुसल्मानोंके घर थे । मुसल्मानोंके मुहल्लोंमें हिंदुओंके बुरी तरह मारे जानेकी खबर सुनकर हिंदुओंके मुहल्लोंमें मुसल्मानोंपर हमला होने लगा । रामप्रसादजीके बगलमें ही मुहम्मद यूसुफका घर था । मुहम्मद बाहर गये हुए थे । उनकी स्त्री तथा बारह वर्षका बच्चा इस्माइल घरमें थे । रामप्रसादजीकी पत्नीने सुना कि मुसल्मानोंके घरोंपर हमला हो रहा है । वह घबरा गयी और पिछवाड़ेसे जाकर इस्माइल और उसकी माँको अपने घरमें ले आयी । लानेके बाद अपने पति रामप्रसादजीसे कहा । वे बहुत प्रसन्न हुए और दोनोंको, भीतर एक सामानका कमरा था, उसमें छिपा दिया । बाहरसे ताला बंद कर दिया । इसके कुछ ही मिनटों बाद एक टोली आयी और मुहम्मदके घरका दरवाजा तोड़कर उनमेंसे तीन-चार आदमी गँड़ासा लिये घरमें घुस गये । पर वहाँ तो कोई था ही नहीं । । किसी जानकारने बताया कि रामप्रसादके साथ मुहम्मदका बड़ा प्रेम था; अतः मुहम्मदकी स्त्री तथा लड़का उन्हींके यहाँ होंगे । वह टोली रामप्रसादजीके घेर पहुँची । रामप्रसादजीने पहले तो नहीं बताया । पर जब टोलीवाले उग्र लोगोंने घरका एक-एक कमरा देखा, तब उन्हें बताना पड़ा कि वे दोनों हमारे घरमें हैं, पर उनको हम मरने नहीं देंगे । उनके पहले हम मरेंगे । टोलीके लोग बड़े उत्तेजित थे । गाली-गलौज करने लगे । एकने कहा—'मारो इसीको, यह हिंदू होनेपर भी मुसल्मान ही है ।' क्रोध राक्षस होता है, उसके जोशमें होश नहीं रहता । एक दूसरेने गँड़ासा चला दिया । रामप्रसादके दाहिने हाथपर गहरी चोट लगी । टोलीवालोंने रामप्रसादसे कहा—'अब भी उन्हें हमारे सामने हाजिर कर दो ।' रामप्रसाद और उनकी बहादुर पत्नीने कहा—'हम दोनोंके जीते-जी उनको नहीं बतायेंगे ।' टोलीवाले लोगोंमें मतभेद हो गया । इतनेमें यह सब सुनकर हरिप्रसाद नामक एक वयोवृद्ध सज्जन दौड़े आये । उनको सभी मानते थे; वे सबको समझाकर लौटा ले गये । रामप्रसादकी मरहम-पट्टीकी व्यवस्था की गयी ।

रामप्रसादजीने, जबतक शान्ति नहीं हुई तबतक इस्माइल और उसकी माँको अपने घरमें परिवारके सदस्यकी भाँति बड़े आदर तथा प्रेमसे रक्खा और उनकी रक्षापर-

पूरा ध्यान दिया। लगभग एक महीने बाद रामप्रसादजीके हाथका घाव अच्छा हुआ। पर उन्होंने अपने कर्तव्यसे जरा भी मुख नहीं मोड़ा। मुहम्मदके लौटनेके बाद उसको भी कुछ दिन घरमें रक्खा। मुहम्मद, उसकी पत्नी तथा इस्माइल कितने कृतज्ञ थे, यह तो उनका हृदय ही जानता था। वे बार-बार गद्गद कण्ठसे रामप्रसाद-दम्पतिके गुण गाया करते हैं।

—गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

(३)

पवित्र भाईचारा

कुछ वर्षों पहले धनबाद शहरमें भाईके घरू कामसे निपटनेके बाद कुछ समय हाथमें बच रहा था। उस समयमें मैंने वाराणसी, वैद्यनाथ धाम आदि धार्मिक स्थानोंकी यात्राका निश्चय किया। तदनुसार वाराणसी पहुँचा, वहाँ मैं मर्णिकणिका घाटपर गङ्गास्नान करके ऊपर आया ही था कि मेरी दृष्टि बंबईके परिचित व्यापारी रहमान भाईपर पड़ी। गङ्गा-स्नानकी तैयारी करते हुए रहमान भाईके पास मैं तुरंत ही जा पहुँचा और बड़े ही आश्चर्यके साथ मैंने उनसे यहाँ कैसे? क्यों तथा कब आये? बड़ी उत्सुकतासे पूछा।

एक बड़ी कमजोर राजस्थानी-जैसी दीखनेवाली बुढ़िया माताकी तरफ अँगुली करके उन्होंने कहा—'भाई! आप कुछ देर यहाँ आरामसे बैठिये, मैं तबतक इन माजीको स्नान कराके तथा स्वयं स्नान कर आता हूँ। इसके बाद आपको सारी बात बताऊँगा।' इतना कहकर बुढ़िया माजीका हाथ पकड़कर वे गङ्गाकी ओर चले गये। मैं इस बीच कपड़े-लत्ते पहनकर तैयार हो गया और उनकी हकीकत तथा बंबईके समाचार जाननेके लिये उत्सुकताके साथ उनकी बाट देखता रहा। स्नान-दर्शन करके वे मेरे पास आये और कहने लगे—"भाई! आप जानते ही हैं कि बंबईमें डिलाइल रोडपर वेस्टर्न रेलवेके वर्कशॉपके सामने हमारी लोहेकी दूकान है। मेरे साथ आनेवाली ये वृद्धा माताजी मेरे हिस्सेदार भूरालाल सेठकी माता हैं। बहुत दिनोंसे भूरालालजीकी इच्छा माताजीको लेकर चारों धामकी यात्रा करनेकी थी, परंतु आलस्यवश तथा कुछ कामकाजके झंझटसे यात्रामें विलम्ब होता गया। इसी बीच कुछ समय पूर्व सेठ भूरालालजीका हृदयरोगसे अचानक देहावसान हो गया और यात्राकी बात वहीं रह गयी।

"भूरालाल सेठके नजदीक परिवारमें कोई था नहीं, दूरके रिश्तेमें एक भाई था वह 'भीवंडी' रहता था, इसलिये उसका जाना सम्भव नहीं था। इधर माजीकी तीर्थयात्राके लिये व्याकुलता बढ़ी जा रही थी, इसलिये मैंने उनको साथ लेकर यात्रा करनेका निश्चय किया और उन्हें आश्वासन दिया। मेरे कुटुम्ब तथा मुहल्लेके दूसरे भाइयोंको पता लगा तो वे बहुत गुस्सेमें आ गये। वे मुझे माजीके साथ न जानेके लिये समझाने तथा धमकाने लगे। पर मैंने अपना निश्चय नहीं छोड़ा। मैंने उन लोगोंको समझाया कि 'भूरालाल सेठ मेरे वर्षों पुराने हिस्सेदार हैं। मेरी बहुतेरी छोटी-बड़ी भूलोंको उन्होंने बरदाश्त किया। व्यापार-धंधेमें मुझे अच्छी तरह आगे बढ़ाकर आजकी इस अच्छी स्थितिमें पहुँचा दिया। उनकी माता मेरी भी माता ही हैं। मैं तो उनके साथ जरूर जाऊँगा।'

"बस, पंद्रह दिन हुए दूकानको भाईके भरोसे छोड़कर हम दोनों यात्राके लिये निकल पड़े। पश्चिममें द्वारका और दक्षिणमें रामेश्वर, धनुषकोटि, मीनाक्षी, पक्षीतीर्थ, पंढरपुर आदि तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके हमलोग कल ही यहाँ पहुँचे हैं। यहाँसे जगन्नाथपुरी, हरद्वार, ऋषिकेश आदि स्थानोंमें जाकर कुछ दिन बाद बंबई लौट जायँगे।"

स्वयं मुसल्मान होनेपर भी एक हिंदू वृद्धा माताजीको हर एक तीर्थकी यात्रा करानेके महान् कार्यके लिये मैंने उनका बहुत अभिनन्दन किया और साथ ही उनसे पूछा—'रहमान भाई! आपको हमारे देवमन्दिर और तीर्थस्थान कैसे लगे?' उन्होंने हँसते-हँसते उत्तर दिया—'भाई! बहुत ही सुन्दर स्थान हैं सभी। आपके मन्दिर हों या हमारी मस्जिदें, अल्लाह, भगवान् तो सब जगह एक ही हैं। मन्दिरमें जायँ या मस्जिदमें, सभी जगह ईश्वरकी बंदगी करनेके अनुकूल वातावरण बन जाता है और चित्तको शान्ति प्राप्त होती है। अब चलें, बहुत समय बीत गया। धूप चढ़ी आ रही है, अतः माजीको जल्दी धर्मशाला पहुँचा दिया जाय।' यों कहकर वन्दन करके वे विदा हो गये। एक भले मनुष्यको ऐसा सुन्दर कृत्य करते देखकर मेरी आँखें शीतल हो गयीं।

वृद्धा माताजीके अन्तरके लाख-लाख आशीर्वाद प्राप्त करते हुए, इन रहमान भाईसे आज भी बाजारमें जब-जब भेंट हो जाती है, तब-तब वाराणसीके मणिकर्णिका घाटका वह दृश्य स्मृतिपर आये बिना नहीं रहता।

ऐसे प्रसंगोंसे सबको शुभ प्रेमकी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये।

(अखण्ड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

(४)

धर्मपालनकी निष्ठा

मानवता पढ़े-लिखे मनुष्योंकी ही बपौती नहीं है, अपितु यह जितनी प्रचुर मात्रामें निर्धन और अशिक्षित वर्गमें प्राप्य है, उतनी शायद शिक्षित एवं धनी वर्गमें सम्भव न हो। अनुमानतः ईसामसीहने बाइबिलमें इसी आधारपर लिखा है—'ऊँट सूचीमुखसे पार हो जाय, यह कदापि सम्भव हो सकता है—लेकिन एक (भोगाभिमानी) धनी मनुष्य स्वर्गमें प्रवेश पा जाय, यह सम्भव नहीं।'

एक ऐसे ही अपने हकके पैसेसे अधिक न लेनेवाले निर्धनका सच्चा ज्वलन्त उदाहरण मैं नीचे उपस्थित कर रहा हूँ।

मेरे एक मित्र एक दिन शेयर मार्केट जानेके लिये एक रिक्शेकी तलाशमें थे। रिक्शेवालोंमेंसे एकने कहा—'बाबूजी! मैं सबेरेसे भूखा हूँ, आप मेरे रिक्शेमें बैठें।' उसके इस करुणाजनक आग्रहको मेरे मित्र नहीं टाल सके और वे उसके रिक्शेमें बैठ गये। उतरते समय उन्होंने उसे पारिश्रमिक एवं पुरस्कारस्वरूप एक रुपया प्रदान किया और चलने लगे। रिक्शेवाला बोला—'बाबूजी! ठहरिये! अपना बकाया पैसा वापस ले जाइये। यहाँका उचित भाड़ा केवलमात्र तीस पैसे है।' वे कहने लगे—'भाई! यह मैंने तुमको जानकर ही दिया है, रक्खो।' रिक्शेवाला कहने लगा—'बाबूजी! हम निर्धन तो अवश्य हैं लेकिन यह अधर्मका पैसा लेकर भगवान्‌को क्या मुँह दिखायेंगे? आपने हमारे आग्रहपर हमारा रिक्शा किया, इसके लिये हम आपके अनुगृहीत हैं; सबेरे भोजन नहीं किया था, यह भी सत्य है; लेकिन यथार्थ पारिश्रमिकसे अधिक लेनेका अधर्म हमसे नहीं हो सकता।' अत्यन्त आग्रह करनेपर भी उसने तीस पैसेसे अधिक लेना अस्वीकार कर दिया और चलता बना। मेरे मित्र इस निर्धन वेशमें धर्मके वास्तविक स्वरूपको समझनेवाले तथा धर्म-पालनकी दृढ़ निष्ठावाले और दैनिक जीवनमें उसका पालन करनेवाले महात्माको देखकर अवाक् रह गये। काश! ऐसी वृत्ति हमारे शिक्षित और धनीवर्गमें भी होती तो हमारी भारतभूमि स्वर्गमें परिणत हो जाती।

—शान्तिस्वरूप गुप्त

(५)

फ़रिश्ता

घटना प्रायः १५-१६ वर्ष पूर्वकी इखी नगरकी है। एक सम्भ्रान्त दम्पतिका इकलौता अल्पवयस्क बालक तेज रफ्तारसे आनेवाली एक मोटरकी चपेटमें आ गया। सिर कुचल गया, अङ्ग-भङ्ग हो गये। क्षणों पूर्व दौड़ते-भागते, किलकारी मारते बालकके स्थानपर उसकी रक्त-रंजित कुचली लाश पड़ी थी।

ड्राइवरपर मुकद्दमा चला। स्वर्गीय बालकके सम्भ्रान्त पिताके मानस-पटलपर कई प्रश्नवाचक चिह्नोंका निर्माण हो रहा था। मानवतावादी वह महापुरुष सोच रहा था—'यदि ड्राइवरको सजा मिल गयी तो क्या इससे उसका पुत्र उसे वापिस मिल जायगा? सजा होनेपर क्या दण्डकी अवधितक उस ड्राइवरके बच्चे अनाथ नहीं हो जायँगे? और क्या ड्राइवरके अबोध बालक भी दोषी हैं?'

और जब उस मानवके, उस देव-पुत्रके न्यायालयमें बयान हुए, तब उसने पुत्र-वियोगके शोकको हृदयके अंदर—बहुत अंदर—उतारकर यह कह दिया कि 'बालककी मृत्युमें ड्राइवरका कोई दोष नहीं था; वास्तवमें बालकने तेजीसे दौड़कर सड़क पार करनेकी चेष्टा की।'…और न्यायालयने ड्राइवरको मुक्त कर दिया।

ड्राइवरकी दृष्टि इकलौते पुत्रके पिताकी मानवताके आगे भूमिपर नीचे झुकी जा रही थी। शान्तभावसे पिता पुत्रशून्य गृहकी ओर अपने कदम बढ़ा रहा था। आस-पासकी दूकानों एवं चौराहोंपर लोग आपसमें कह रहे थे 'इन्सान नहीं,—फ़रिश्ता है फ़रिश्ता।'

देवभूमि भारतमें ऐसे अनेक अज्ञात फ़रिश्ते हैं, पर उनका पता कैसे लगे?

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, एडवोकेट, भवानीमंडी (राजस्थान)

(६)

श्रीहनुमान-चालीसा-पाठ

यद्यपि मैं पूज्य हनुमान्‌जीकी सेवा करनेमें सब तरहसे असमर्थ हूँ; क्योंकि न मेरे पास ज्ञान है, न धन और न वातावरण, किंतु प्रभुकी कृपा ही है कि मैं एक बार प्रतिदिन श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनमात्र ही कर लेता हूँ। इसीसे मुझे अपार शान्ति मिलती है। ईश्वरकी कृपासे पिछले २६ वर्षोंके कार्यकालमें मैं अत्यन्त घोर परिस्थितियों एवं संकटोंमें फँसा, जिनमें मेरी स्वयं एवं पत्नीकी मृत्युकी स्थितियाँ, पत्नीकी कैद, परीक्षाएँ, रोजगारकी समस्याएँ, घोर आर्थिक संकट, एकमात्र पुत्रकी बीमारी, व्यावसायिक राज्य-सम्बन्धी विषम संकट आदिकी समस्याएँ प्रधानतः रही हैं। लेकिन इन

सभी परिस्थितियोंमें आजतक तो वर्षों, महीनों, दिनों, घंटों और मिनटोंके बजाय सेकंडोंमें ही मेरी रक्षा हुई है।

श्रीहनुमानचालीसाकी चौपाई—

'यह सत बार पाठ कर जोई। छूटइ बंदि महासुख होई॥'

—का मेरी बुद्धिके अनुसार सरलतम अर्थ होता है— 'जो (मानव) श्रीहनुमानचालीसाका सौ बार पाठ करता है, वह विषम परिस्थितियोंसे मुक्ति पाकर महासुखको प्राप्त करता है।' इसी चौपाईसे मुझे आन्तरिक प्रेरणा मिली और उपर्युक्त परिस्थितियोंमें मैंने अपनी सामर्थ्यके अनुसार एकाग्र चित्त करके श्रीहनुमानचालीसाके एक ही स्थानपर (श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरमें अथवा प्रतिमा, तस्वीरके समक्ष) एक सौ बार पाठ किये और तत्काल ही आशातीत सफलता प्राप्त की। वैसे समय मिलनेपर रातको दस बजे (किसी भी मौसममें) शुद्ध जलसे स्नान कर अपने ही घरपर उनकी तस्वीरके समक्ष अगरबत्ती जलाकर पूर्ण मनोयोगसे सात दिनतक रोजाना सौ-सौ बार पाठ किये हैं और तदुपरान्त किसी भी कार्य-हेतु प्रस्थानकर सफलता प्राप्त की है। मेरा अमर-अटल विश्वास है कि प्रभु अवश्य सुनते हैं। अन्तमें समर्पण करता हूँ—

'आयो है अनाथ, रघुनाथ द्वारपालू दर
द्वार पै परे को अब आन को उपायो है।'

जय बजरंग

—बाबूलाल अग्रवाल, एम्० ए०, बी० एड०, (साहित्यरत्न)

(७)

रामनामसे जीवनदान

सन् १९५८ ई० की बात है। मैं भयंकर टाइफाइड ज्वरसे पीड़ित हो गया था। लगातार आठ महीनेतक बीमार रहा। मेरे चाचाजीने बहुत सेवा-शुश्रूषा की। उन्होंने मेरे ठीक होनेके बाद मुझे बताया कि ऐसी बीमारी मैंने आजतक नहीं देखी।

इसी बीमारीमें एक दिन मेरी हालत अचानक बहुत ज्यादा गिर गयी। भाई-बन्धु मेरी हालत देखकर मेरे अगल-बगल बैठे आँसू बहा रहे थे और सभीने मेरे जीनेकी उम्मीद छोड़ दी थी।

रातका समय था। मुझे बहुत बेचैनी हो रही थी। जबान बंद हो गयी। अचानक मेरा साँस बहुत ज्यादा तेज चलने लगा। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मैं एक भयंकर कुएँमें एक बहुत मोटी रस्सीके सहारे लटक रहा हूँ। मेरे भाई-बन्धु कुएँके इर्द-गिर्द उस रस्सीको पकड़े खड़े हैं (यह सब दृश्य मुझे साक्षात् दिखायी दे रहा था)। वे लोग मुझे उस कुएँसे बाहर निकालनेके लिये रस्सेको ऊपर खींचनेकी कोशिश कर रहे हैं, ज्यों ही वे थोड़ा-सा ऊपर खींचते हैं, त्यों ही एक साथ तीन-चार लड़ें (धागे) रस्सेकी टूट जाती हैं और आखिरमें इस खींचातानीमें सिर्फ एक बिल्कुल पतला रस्सेका धागा (जो एकदम कमजोर था) रह गया। मेरा दम बहुत घुट रहा था।

उस वक्त मुझे ऐसा महसूस हुआ कि यह कुआँ मौतरूपी कुआँ है और ये रस्सेका एक-एक धागा—जो टूटता जा रहा है—ये मेरे साँस हैं और अब मेरा यह आखिरी साँस है। यह एक धागा टूट जायगा तब आखिरी साँस खतम होकर जीवनलीला समाप्त हो जायगी।

मैं यदा-कदा धार्मिक ग्रन्थ पढ़ा करता था। इसीसे ऐसा जानता था कि 'अन्त समयमें प्रभुको याद करनेसे सब पापोंसे मुक्त होकर मोक्ष हो जाता है'—यह बात मेरे ध्यानमें आयी और मैंने 'हे राम' 'हे राम' उच्चारणके लिये कोशिश की; लेकिन मेरी जबान नहीं खुल सकी; फिर भी मैंने मन-ही-मन 'हे राम' 'हे राम' उच्चारण किया। उस समय कुआँ और रस्सीका सब दृश्य गायब हो गया और मुझे गाँधीजीकी समाधिका 'राजघाट' दिखायी दिया। उसपर मुझे 'हे राम' 'हे राम' लिखा दृष्टिगोचर हुआ और उसीका मनन करता रहा। इसी बीच मुझे एक जोरसे हिचकी आयी और जीभमें चेतनता आनेके बाद साँस विधिपूर्वक चलने लगा तथा मेरे आत्माको असीम शान्ति मिली। उसी समयसे मैं शीघ्रतासे अच्छा होने लगा और जल्द ही भला-चंगा हो गया।

इस प्रेरणासे मुझे मेरे प्रभु हर समय मेरे इर्द-गिर्द घूमते नजर आ रहे हैं। जब कभी मैं विपत्तिमें पड़ता हूँ, मैं प्रभुको पुकार लेता हूँ और विपत्ति-मुक्त हो जाता हूँ।

बोलिये मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी जय!

—उपर्युक्त घटना मेरे जीवनकी सही घटना है। मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि पाठकोंके लाभार्थ इस घटना-को यथावत् 'कल्याण' में प्रकाशित करनेकी कृपा करें।—

—डा० नागरमल तूनवाल

एम० एच० एम० डी० एस० (रजिस्टर्ड)

किशनगंज (पूर्णियाँ)

(८)

गजेन्द्रमोक्ष-स्तोत्रसे पुराना रोगनाश

लगभग आठ वर्ष पूर्व मेरी नाकके अग्रभागपर चनेके दानेके बराबर एक छोटी-सी फुंसी निकली। वह शनैः-शनैः बढ़ने

लगी। मैंने इसकी चिकित्साके लिये हापुड़में एक डाक्टरको दिखाया। लगभग दो वर्षतक उसपर मलहम आदि लगाता रहा, परंतु कुछ लाभ न होनेपर डाक्टरने ऑपरेशन करवानेकी सलाह दी। ऑपरेशन कराया गया। उसके बाद कुछ महीने ठीक रहा। ऊपरसे ठीक प्रतीत होता था, परंतु भीतर-ही-भीतर वह फैलता गया; कुछ दर्द भी होता था। परिणाम यह हुआ कि वह एक जड़ोंवाला फोड़ा बन गया। थोड़ा-थोड़ा पानी भी रिसने लगा। मैंने अपनी चिकित्साको चालू रक्खा। कभी ठीक हो जाता, कभी फूट पड़ता, इस तरहसे छः वर्ष व्यतीत हो गये।

इसके बाद मैंने दिल्लीके एक बड़े अस्पताल विलिंगडनमें तीन-चार योग्य डाक्टरोंको दिखाया। वे लगभग एक वर्षतक मलहम, टेब्लेट, इन्जेक्शन आदि देते रहे, परंतु लाभ न होनेपर उन्होंने ऑपरेशनके लिये परामर्श दिया। ऑपरेशन हुआ। उसको अच्छी प्रकारसे छीलकर मेरी बाजूसे मांसका एक टुकड़ा लेकर ऊपर लगा दिया गया। कुछ दिनोंके बाद जख्म भर गया और मांसका टुकड़ा भी जुड़ गया।

लगभग आठ-नौ महीनोंके बाद वह फिर उभर आया। मैं पुनः उसी अस्पतालमें दिखानेके लिये डाक्टरके पास गया। डाक्टरने कहा—'कुछ त्रुटि रह जानेसे ऐसा हुआ है, इसलिये इसका ऑपरेशन दुबारा करना पड़ेगा। फोड़ा नाकके अग्रभागके बिल्कुल समीप था। दोबारा ऑपरेशन करवानेपर मुझे नाककी बनावटमें कुछ अन्तर आनेका भय था, अतः मैंने निश्चय किया कि 'अब ऑपरेशन नहीं करवाऊँगा।' मैं घर वापिस आ गया। मैंने मनमें सोचा, अब तो भगवान्‌से ही इसके लिये प्रार्थना करूँगा।

मैंने दूसरे दिन प्रातः नहा-धोकर 'गजेन्द्र-मोक्ष' स्तोत्रका पाठ शुरू कर दिया। उसी रातको वह फुंसी अचानक फूट गयी और उसमेंसे सारा पानी निकल गया। मुझे कुछ दर्द भी कम अनुभव हुआ। मैं प्रतिदिन उस पाठको करता रहा। लगभग एक सप्ताहके बाद वह घाव बिल्कुल साफ हो गया। लगभग दो सप्ताहके पाठसे वह आठ वर्षका फोड़ा इस प्रकारसे लोप हो गया, जैसे पहले इस स्थानपर कुछ था ही नहीं। मैंने भगवान्‌का बहुत-बहुत धन्यवाद किया।

सत्यपाल मलिक, २४५, देविन्द्रपुरी, मोदीनगर(मेरठ)

(९)

कुछ उपयोगी दवाइयाँ

१

मुँहके छालोंकी रामबाण दवा

पालसे निकले हुए गरम आम या अन्य किसी गरम वस्तुके खानेसे, पेटकी खराबीसे, ज्यादा तरबूज या खरबूजोंके खानेसे मुँहमें छाले पड़ जाते हैं। मेरे मुँहमें भी ऐसे छाले पड़ गये थे, जो इस प्रयोगसे मिट गये। अन्य कई लोगोंने प्रयोग किया, सबको लाभ हुआ।

छालोंकी-पहचान—मुँहमें छाले होनेपर मुँहमें मिठाई, मट्ठा, जलतक किसी भी वस्तुके खाने-पीनेपर जलन होती है। छालोंके कई भेद होते हैं। मुँहमें छोटे-छोटे छाले बहुधा जलनके कारण होते हैं। वे लाल रंगके भी होते हैं तथा सफेद रंगके भी। हाथ फिरानेपर खुरदरी फुंसी-सी प्रतीत होती है। इनसे बड़ी जलन होती है। बड़े छाले सफेद रंगके होते हैं, छूनेपर जलन होती है। इनके नष्ट करनेका उपाय है—

(१) छाले होठों तथा जीभपर हों तो थोड़ी-सी फिटकरीकी डली लेकर किसी अपने साथीसे छालोंपर मलवावें। छालोंपर फिटकरीकी रगड़से जो द्रव्य पैदा हो, उसे बाहर जमीनपर उगल दें। दिनमें २-३ बार ऐसा करनेसे छाले शर्तिया नष्ट हो जाते हैं।

(२) गलेके भीतरतक छाले हों तो फिटकरीका घोल बनाकर उसका प्रयोग करें। एक छटाँक फिटकरीमें एक पाव पानी डालकर 'ॐ भगवते नमः' मन्त्रको बीस बार बोलते हुए घोल बना लें। इस घोलके कुल्ले करें। कुल्लाका जल बाहर पृथ्वीपर थूक दें, घोल पीये नहीं। दिनमें यह प्रयोग कई बार करें, पर घोल बनाते समय मन्त्र-जप करना न भूलें। इससे छाले निश्चय ही मिट जाते हैं।

—ठाकुर श्रीचन्द्रपालसिंह चौहान, पो० न्यौराई, जिला एटा (उ० प्र०)

२

दादकी अनुभूत दवा

निम्नलिखित 'दाद'का बहुत उपयोगी और बहुतसे रोगियोंपर आजमाया हुआ नुस्खा है।

१. खुरासानी अजवाइन	=१० ग्राम
२. गंधक आमलासार	=१० ग्राम
३. सोहागा	=१० ग्राम
४. राल	=१० ग्राम
५. कपूर	=५ ग्राम
योग	=४५ ग्राम

इन सब दवाइयोंको कूट-पीसकर कपड़छान कर लें और फिर नीबू या पँवार (चकौड़) के अर्कमें घोटकर गोली बना लें और धूपमें सुखा लें। जरूरतके समय एक गोलीको नीबूके रस या पानीमें घिसकर दादपर लगावें। तीस दिनमें दाद अच्छा हो जायगा।

—माताप्रसाद तहसीलदार (औ० प्रा० मकान न० मो० $S\frac{3}{74}$ अर्दली बाजार, वाराणसी—२

३

दादकी अचूक दवा

शनिवारके दिन सुबह उठते ही बासी मुँह थोड़ा मुँहसे थूक लेकर दादपर लगावें। सात दिनतक लगातार लगाते रहें। आपका दाद अवश्य मिट जायगा। इससे बहुतोंको लाभ हुआ है।

—नाटककार हरिप्रसाद शर्मा, छोटा मुलाखाली, वाया कैनिंग टाउन, २४ परगना

४

दाढ़ और दाँतके दर्दकी अनुभूत दवा

काकडा सिंगी एक तोला

छोटी पीपर एक तोला

दोनोंको महीन पीसकर आठ आनेभर खानेका सोडा मिलाकर रख लें। जहाँ दर्द हो, वहाँ मल दें और नीचेको मुँह कर दें ताकि सब लार गिर जाय। उसके बाद गरम पानीसे कुल्ला कर डालें। दस मिनटमें दर्द मिट जायगा। यह मेरा अनुभव किया हुआ योग है। बहुत-से व्यक्तियोंको लाभ हुआ है।

—राधावल्लभ उपाध्याय, नगरा (झाँसी)

५

श्वेतप्रदरपर अनुभूत योग

शीशमके पत्तोंको छायामें सुखा लीजिये। जब पूर्णतया सूख जायँ, उन्हें कूटकर कपड़छान कर लीजिये। जितना चूर्ण बने, उतनी ही मिश्री पीसकर रख लीजिये। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर ठंडे जल (सद्यजल) के साथ १ तोला (आधा तोला चूर्ण और आधा तोला मिश्री पीसी हुई) लीजिये। सात दिनतक ऐसा करनेपर ईश्वरकी कृपासे आशातीत लाभ मिलेगा। जितने दिन लें, उतने ही दिन तेल, खटाई, गुड़, अचार, मिर्ची न खावें।

६

सुजाकपर परीक्षित योग

यह योग एक महात्माजीका बताया हुआ है। इसका परीक्षण किया हुआ है और शत-प्रतिशत लाभ हुआ है।

'तरबूज (मतीरा या कलींदा) का फल अधपका-सा हो (अर्थात् उसमें सफेद बीज रहें, तबतककी अवस्थाका फल) लेकर प्रातःकाल उसको काटकर ऐसे स्थानपर डाल दीजिये, जहाँ आप ओटमें पेशाब कर सकें। आपको २४ घंटेतक एक ही बारके कटे हुए टुकड़ोंपर ही पेशाब करना है। हर प्रातःकाल उन्हें बदल दीजिये। इस प्रकार केवल तीन ही दिनमें आप पूर्णतया स्वस्थ हो जायँगे।

यदि बहुत ही अधिक वीर्यपात होता है तो पेशाब करते समय दो टुकड़ोंके बीच शिश्नको रखकर (पेशाब करते समय ही) शेष टुकड़ोंपर पेशाब कीजिये। ईश्वरकी कृपासे आपके तीन ही दिनमें पूर्ण लाभ हो जायगा। इसमें कोई परहेज भी नहीं है।

× × ×

— बाबूलाल अग्रवाल, एम्०ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न,
हिंदी-साहित्य-सदन,
सिकराय (जिला जयपुर राज०)

७

मिरगीकी दवा

मीठी बचको १ छटाँक लावे और उसको अच्छी तरहसे कूट डाले, फिर कपड़छान कर रोज चार आनाभर सुबह-शामको शुद्ध मधु (शहद) के साथ चाटे। इसको करीब-करीब १५ दिनतक चाटना चाहिये। जहाँतक उम्मीद की जाती है कि यह रोग इतने दिनोंमें अच्छा हो जायगा। अगर नहीं अच्छा हो तो एक माहतक सेवन कराइये। इतने दिनमें मिरगी अवश्य अच्छी हो जायगी। भोजनमें सिर्फ दूध-भात खिलाना चाहिये। ज्यादा-से-ज्यादा फल खिलाया जा सकता है।

—अम्बिकेश्वरपति, त्रिपाठी 'पत्रकार', अयोध्या (उ० प्र०)

विशेषाङ्कमें 'अग्निपुराण'के साथ-साथ 'गर्गसंहिता'के प्रकाशनकी योजना

(भावुक भगवद्गुणानुरागी पाठकोंके लिये खुशखबरी)

'कल्याण'के पाठकोंमें जहाँ बड़े-बड़े तत्त्वविचारक, भारतीय प्राचीन कलाविद्याके अनुरागी अन्वेषक एवं दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, कर्म-उपासना, कला-कौशल आदि गम्भीर विषयोंमें ही आनन्द प्राप्त करनेवाले श्रद्धेय महानुभाव हैं, वहाँ ऐसे भी लाखों पाठक-पाठिकाएँ हैं, जो भगवान्‌के गुणानुवाद, चरित्र-लीला तथा सरलतासे सबकी समझमें आनेवाले सरस विषयोंमें विशेष अनुराग रखते हैं। भारतीय प्राचीन कला-विद्या आदिके अनुरागी महानुभावोंके लिये 'अग्निपुराण' संक्षेपमें परंतु आलोच्य विषयोंका बिना पक्षपातके बड़ी ही सुन्दर रीतिसे रहस्य बतलानेवाला एक महान् ज्ञानकोष ही है। इसी दृष्टिसे 'विशेषाङ्क'में इस महान् आदरणीय ग्रन्थके प्रकाशनका निश्चय किया गया और तदनुसार उसका अनुवाद, सम्पादन तथा मुद्रण भी आरम्भ हो गया, जो चल रहा है। 'अग्निपुराण'की महत्ता और ज्ञान-विज्ञान-कला आदिकी दृष्टिसे उसकी उपयोगिता सर्वथा सिद्ध है। परंतु हमारे भगवद्गुण-लीलानुरागी भावुक पाठकोंका यह अनुरोध रहा कि 'अग्निपुराण'के साथ-साथ भगवान्‌के लीला-गुणका सरस वर्णन करनेवाले किसी ग्रन्थको भी प्रकाशित किया जाय। लेकिन अग्निपुराण स्वयं बड़ा विशद ग्रन्थ है और हमारे विद्वान् अनुवादक तथा ग्रन्थके सम्पादक एक-एक विषयको अच्छी तरह समझकर उन-उन विषयोंके अन्यान्य ग्रन्थोंका अध्ययन कर पाठकोंको सहज रूपमें समझानेके लिये आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ लिखकर उसे सर्वाङ्गसुन्दर बनाना चाहते हैं, जिससे सामग्री और भी बढ़ जाती है। इस अवस्थामें विशेषाङ्कमें पूरा 'अग्निपुराण' देनेपर स्थान बचना सम्भव नहीं प्रतीत होता। दूसरे यह भी एक कारण है कि 'अग्निपुराण'में कई ऐसे कठिन विषय हैं, जिनका पूर्ण अध्ययन करके उनका ठीक-ठीक अनुवाद करने तथा टिप्पणी आदि देकर उनका विशेष विवेचन करनेमें भी विशेष समय लगनेकी सम्भावना है। इसलिये यह निश्चय किया गया कि लगभग आधा 'अग्निपुराण' इस अङ्कमें दिया जाय और लगभग आधा 'गर्गसंहिता'का अनुवाद छापा जाय। इससे भावुक पाठकोंको भी संतोषप्रद मनोनुकूल सामग्री मिल जायगी और 'अग्निपुराण'का सम्पादन भी धीरे-धीरे अच्छी तरह हो जायगा।

'गर्गसंहिता' भगवान् श्रीकृष्णके लीला-गुणका बड़ा ही सरस वर्णन करनेवाला प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें गोलोकसे परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके इस भूमिपर अवतार लेनेके प्रसंगसे लेकर उनके पुनः गोलोक पधारनेतककी बहुत-सी नयी-नयी अत्यन्त रोचक ऐसी लीलाओंका वर्णन है, जो अत्यन्त आकर्षक हैं और पढ़ते-पढ़ते पाठकोंके मनमें अजीब गुदगुदी पैदा करनेवाली और उनके हृदयोंमें आनन्द-परिपूर्ण रस-सुधा-सागरकी तरङ्गें लहरा देनेवाली परम रसमयी हैं।

अब इस विशेषाङ्कमें गम्भीर तथा सरल—विज्ञानमय और रसमय—दोनों प्रकारके प्रसंग रहनेसे यह सभी पाठकोंके लिये अत्यन्त रुचिकर और आनन्दप्रद हो जायगा। हम अपने उन भावुक पाठक महानुभावोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनकी प्रेरणासे इसमें गर्गसंहिता'का अंश साथ-साथ देनेका निश्चय किया गया।

'अग्निपुराण' तथा 'गर्गसंहिता'के शेष बचे हुए लगभग आधे-आधे भाग भगवत्कृपासे आगामी वर्षके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किये जा सकते हैं।

एक विशेषाङ्कमें दो ग्रन्थोंका आधा-आधा प्रकाशन 'कल्याण'की विशेषाङ्क-परम्परामें एक नयी चीज होगी, इससे सम्भव है, कुछ प्रेमी पाठकोंको यह रुचिकर न हो। इसके लिये हम उनसे करबद्ध क्षमा चाहते हैं। कल्याण'के अधिक संख्यक पाठकोंको इससे निश्चय ही बड़ा संतोष होगा।

हमारे प्रधान सम्पादककी अस्वस्थता, 'अग्निपुराण'के विषयोंकी कठिनता एवं 'गर्गसंहिता'के प्रकाशनका निश्चय देरसे होने आदि कारणोंसे इस विशेषाङ्कके प्रकाशनमें निश्चय ही विलम्ब होगा। विशेष चेष्टा करनेपर भी जनवरीके अन्तसे पहले निकलना कठिन है। हमारे कृपालु पाठक परिस्थिति समझकर धैर्य रक्खें और कृपया क्षमा करें।

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक-पत्र]

वर्ष ४३

[साधारण अङ्क संख्या २ से १२ तककी विषय-सूची; विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसीके आरम्भमें देखनी चाहिये; वह इसमें सम्मिलित नहीं है।]

सं० २०२५–२०२६

सन् १९६९ ई०

की

निबन्ध, कविता, कहानी

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार
चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०

* [प्रकाशक—मोतीलाल जालान]

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये)
विदेशोंके लिये रु० १३.३५ (१५ शिलिंग)

साधारण प्रति भारतमें .५० (पचास पैसे)
विदेशमें .८० (अस्सी पैसे) (१० पेंस)

निबन्ध-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

१–अन्त मति सो गति (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम्० ए०, एल्० टी०) ... ८३८

२–अपने ऐबोंपर नजर कर ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ९६१

३–अर्चावतार (प्रेषक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर) ८९४

४–अलौकिक अन्तरिक्ष जगत् (श्री वि० प्र० उपाध्यायजी) ७६७

५–अवतार-जन्म-कर्म-रहस्य [व्रजभाषामें किन्हीं अज्ञातनामा प्राचीन महात्माका लिखा हुआ] (प्रेषक—श्रीराधेशरणजी 'युगलदासी') ७२६

६–आचार्यदेवो भव (प्रो० डॉ० श्रीसीतारामजी झा, 'श्याम' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ९८९

७–आज मानव क्या कर रहा है ? ... १२१३

८–आत्मनियन्त्रणसे कल्याण (पं० श्रीजयकान्त-जी झा) ७७५

९–आत्मनिरीक्षण कीजिये (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ८४१

१०–आत्मनिवेदनपर एक दृष्टि (प्रो० श्रीराधेश्याम-जी रस्तोगी; अनु० श्रीशेषमणिजी पाण्डेय) १०११, १०८८

११–आत्मसिद्धि (स्वामीजी श्रीसत्यभक्तजी) १०९३

१२–आत्मस्वीकृति क्यों और किसलिये ? (श्री-अजेन्द्रनाथ ठाकुर, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, सा० र०) ९०६

१३–आनन्दमार्ग (ठाकुर श्रीरतनसिंहजी परिहार, बी० ए०) ९१४

१४–आपसे उनकी हालत खराब है (श्रीलालमणि-प्रसादजी गुप्त) ९०८

१५–इस प्रमादका अन्त कब होगा ? (श्री-परिपूर्णानन्दजी वर्मा) १२७८

१६–एक ईसाई लाटपादरीका श्रीकृष्णस्मरण, प्रार्थनासे रोगनाश तथा विलक्षण परिवर्तन (भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा) १२६३

विषय — पृष्ठ-संख्या

१७–एक प्रश्न (आचार्य श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल, एम्० ए०) ... ११४४

१८–एक प्रश्न (श्रीगुरांदित्ताजी खन्ना) ... ११६३

१९–एक महात्माका प्रसाद (प्रेषक—श्रीमाधव) ८२४, ९३९, ११२४

२०–एक लाख रुपयेके मूल्यका कीमती श्लोक (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेशरी) १०२९

२१–क्या हिंदू होना पाप है ? (शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री) ... १३२३

२२–कः पन्थाः (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ९७९

२३–कर्तव्यनिष्ठ बनो (पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री-श्रीदेवरहवा बाबाका उपदेश) [प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसाद] ... ८२२

२४–कर्मोंका फल (श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०, बी० एड्०) ... ११०८

२५–कल्याण ('शिव') ६९९, ७५८, ८१८, ८७८, ९३८, ९९८, १०५८, १११८, ११७८, १२३८, १२९८

२६–कल्याणका आगामी विशेषाङ्क—'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-अङ्क' ९९६

२७–कामके पत्र ८६४, ९३०, ९८८, १०४७, ११११, ११७०, १२२६, १२८५, १३४६

२८–कुछ चिन्तन; कुछ अनुभूति (श्रीबालकृष्णजी बलदुआ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) ... १२४४

२९–(श्री) कृष्णकर-कंज (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ९५३

३०–(श्री) कृष्णके जन्म-कर्मको तत्त्वतः जाननेसे मुक्ति (श्रीकृष्णप्रसादजी शर्मा, धिमिरे, शास्त्री, काव्यतीर्थ, भागवत) ... ७१७

३१–(श्री) कृष्णजन्मभूमि मथुराके प्राचीन मन्दिर (आचार्य डॉ० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी) ९२४

३२–(श्री) कृष्ण-बलरामकी मधुर शिशुलीला (श्रीश्यामलालजी हकीम) ... ८९२
३३–खान-पानकी पवित्रतापर स्वामी श्रीविवेकानन्द-के विचार (श्रीजयदयालजी डालमिया) ... १०४५
३४–गंदा साहित्य और सिनेमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश) ... ११८५
३५–गणपति-स्मरण तथा भगवान्के नमस्कारका प्रभाव (एक अनुभवी) ... ११४५
३६–गांधीजी और धर्म (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा) १०८०
३७–गांधीशताब्दीके मङ्गल-प्रसङ्गमें गांधीजीकी दिव्यवाणी ८२५, ८८६, ९५९, १०१६, १०७८, ११२५
३८–गायका अर्थ-शास्त्र (श्रीहरिश्चन्द्र विद्यार्थी, बी० ए०, बी० टी०) ८५३
३९–गायत्री-मन्त्रका रहस्य और समीक्षा (श्री-विजयशंकरजी द. दवे) ... ११९३
४०–गुरु कैसा करें (डा० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी') ८४२
४१–गोदुग्ध अमृत है (डा० श्रीश्याममोहनजी कपूर) ८६०
४२–गोरक्षा संसारको हिंदू-धर्मका दिया हुआ प्रसाद है (महात्मा गांधीजी) ... १२४१
४३–चन्द्रलोक और चन्द्रदेव (स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी महाराज) ... ११९०
४४–चन्द्रलोक-यात्रा और भारतीय शास्त्र (पूज्यपाद स्वामीजी अनन्तश्री श्रीकरपात्रीजी महाराज) ११८८
४५–जरूरत है जीवनको बदलनेकी ! (श्रीकृष्ण-दत्तजी भट्ट) ११५४
४६–जीवन और मृत्यु (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ७४१
४७–जीवनमें पालन करनेयोग्य (हनुमानप्रसाद पोद्दार) १०६६
४८–जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता (गुरु श्रीरामप्यारेजी अग्निहोत्री) १२७४
४९–जीवात्माकी मरणोत्तर अवस्था—आकर्षण-सिद्धान्त (प्रा० कुमुद विद्यालङ्कार) ... ७७१
५०–जो तोकू काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल (श्रीमोरेश्वर सीताराम पिंगले, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) ८३५
५१–ज्ञान-कर्म-समुच्चय तथा गति-रहस्य (श्रीबाबू-रामजी द्विवेदी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न) ७०५
५२–ज्ञानमें दर्शन (साधुवेषमें एक पथिक) ११३४
५३–तत्त्वं वन्दे तदद्भुतम् (श्रीभालचन्द्रजी दीक्षित, एम्० ए०, व्याकरणाचार्य) ... ११०३
५४–तद् विष्णोः परमं पदम् (पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी० लिट्०, साहित्याचार्य) ७०३
५५–तुलसीके हनुमान् (श्रीभिक्षु आनन्द) ... ९१८
५६–दानका प्रभाव (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर) ७९८
५७–देशप्रेमी महानुभावोंसे विनीत प्रार्थना ... ९७४
५८–धर्मका वास्तविक स्वरूप (मेहता श्रीरणजीत-मलजी) १३३४
५९–नारदीय भक्ति (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र) ९४९
६०–निर्वाणका स्वरूप—[पूज्य श्रीसंतसेवीजी महाराज] (प्रेषक—श्रीनारायणप्रसादजी अग्रवाल) ७६१
६१–निर्विकारिताकी साधना (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) १२२०
६२–पढ़ो, समझो और करो ७५०, ८१४, ८७२, ९३३, ९९२, १०५१, १११३, ११७२, १२३२, १२९१, १३४९
६३–परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार या प्रत्यक्ष भगवद्दर्शन (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ११३७
६४–परमात्मासे सौदेबाजी कैसी? (श्रीधर्मवीरजी) ... १३३८
६५–परमार्थकी पगडंडियाँ ... ९७१, १०९९, ११६४, ११८०, १२४५, १३४२
६६–परलोक और पुनर्जन्म माननेमें हर प्रकारसे कल्याण (बाबू श्रीश्रीप्रकाशजी) ... ७६५

६७–पश्चिमके अन्धानुकरणके भयानक परिणाम (श्रीधर्मवीरजी) ११०९
६८–पागलकी झोली (महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी) १०२१
१०७४, ११२७ १२४२
६९–पुनर्जन्म और जडवाद (श्रीराजेन्द्रप्रसाद-जी जैन) ९०३
७०–पुराणकी पुनर्जन्म-कथा (श्रीगोपाल-कृष्णजी मल्लिक) ७४२
७१–प्रकृतिमण्डलमें रहनेपर भी श्रीवृन्दावनकी अप्राकृतता (श्रीश्यामलालजी हकीम) ... १३१६
७२–प्रभु मुझे निर्विकार कर ! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) १३३६
७३–प्राचीन भारतकी परीक्षा-पद्धति (डॉ० श्रीलक्ष्मीनारायणजी दुबे, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न) ८४८
७४–प्रार्थना—एक चिन्तन [संत श्रीविनोबा] (प्रेषक—श्रीविनयकृष्ण रामदास) ... १२९९
७५–प्रारब्ध-विचार (श्रीसुदर्शनसिंहजी) ... ७३०
७६–प्रेमरस और अनन्त प्रकाश (बाबा श्रीदीनशरणदासजी) १००३
७७–(श्री) बगलामुखी देवीकी उपासना (ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा 'वानप्रस्थी' वैद्य) ... ८०८
८६८, ९२०
७८–बुढ़ापेके कष्टोंसे बचनेके कुछ अनुभूत उपाय (श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय, ए० एम्० टी० आई०, साहित्यभूषण) ... ११४७
७९–बुराइयोंके अन्धकारमें अच्छाइयोंकी किरणें (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) १२४९
८०–ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके परलोक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार (पुराने लेखोंसे संकलित) ... ७०१
८१–ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश ७५९
८१९, ८७९, ९४०, ९९९, १०५९, ११२१,
१२३९, १३००
८२–ब्राह्मण अपनी भगिनि बूआके मकानपर भेंट लेकर गया (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ९६४
८३–भगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग— 'कल्याण' कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर) १२२९
८४–(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना १२८९
८५–भगवन्नाम-स्मरण [पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री श्रीदेवरहवा बाबाका उपदेश] (प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी) ... १०६४
८६–भगवान्‌की रासलीला—एक चिन्तन ... ८२६
८७–भगवान् राम और सीताका जीवन-दर्शन (श्रीविश्वम्भरसहायजी प्रेमी) ... १०४१
८८–मन्दोदरीकी सात्त्विक भावना (श्रीकपिल-देवजी तिवारी, एम्० ए०, बी० एड्०) ८४६
८९–महात्मा गांधीके प्रति श्रद्धाञ्जलि (हनुमान-प्रसाद पोद्दार) ११७९
९०–मानवताकी विजय (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर) ११०५
९१–मानव-धर्म (पं० श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट) १३२०
९२–मानसका स्वान्तःसुखाय (डॉ० श्रीभुवनेश्वर-नाथजी मिश्र 'माधव', एम्० ए०, पी-एच्० डी०) १२१७
९३–मानसिक विकास एवं सत्सङ्गपर एक दृष्टि (श्रीजयकान्तजी झा) ९६८
९४–मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते (श्रीरामप्यारेजी मिश्र, एम्० ए० (संस्कृत तथा हिंदी), व्याकरणशास्त्राचार्य, साहित्यरत्न) ७२०
९५–मूक प्राणियोंकी पुकार (भक्तप्रवर श्रीबाँकेबिहारीजी) १२६७
९६–मृत्युकी याद (श्रीराधाकृष्ण) ... १०८२
९७–मृत्यु-विज्ञानपर एक दृष्टि (श्रीरतनलालजी परमार) ७४५
९८–मोक्षदायिनी तुलसी और उसका स्वास्थ्योपयोगी उपयोग (वैद्य पं० श्रीगोपालजी द्विवेदी) ... ९१६

९९–यह कैसी गांधीशताब्दी ? (श्रीजयन्तिलाल एन० मानकर महोदय, सम्पादक 'श्री-जीवदया') ८५१
१००–युधिष्ठिर महान् [महाभारतसे संकलित] (सं०—श्रीगिरिजाशंकरजी त्रिवेदी) ... ७२५
१०१–राजस्थानमें अकाल-पीड़ितोंकी सेवा ... ८१३
१०२–श्रीराधामाधवका दिव्यस्वरूप (श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सं० २०२६ पर गोरखपुर, गीता-वाटिकामें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ११९७
१०३–(श्री) राधा-माधव-तत्त्व (पं० श्रीगौरी-शंकरजी द्विवेदी) १२५६
१०४–(श्री) राम (श्रीकाशीनाथजी शर्मा, एम्० ए०, डिप्० इन्० एड्०, साहित्यरत्न) १०३८
१०५–(श्री) रामचरितमानसमें बड़े-छोटोंका पारस्परिक स्नेह एवं भक्तिभाव (श्री-राजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, रिसर्च स्कॉलर) ७८७
१०६–रूसी महिलाकी राधा-कृष्णके प्रति भक्ति (श्रीविश्वम्भरसहायजी प्रेमी) ... १२२५
१०७–विज्ञानकी कसौटीपर मन्त्र—(श्रीगोविन्दजी शास्त्री) १३१७
१०८–विभूति-रहस्य (तान्त्रिकशिरोमणि श्री-नथमलजी दाधीच, कौलाचार्य) ... ९१०
१०९–विराट्-दर्शन (श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल) १२५४
११०–विलक्षण पति-प्रेम (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर) १२८३
१११–विश्वमें हाहाकार और हमारा कर्तव्य (श्री-परिपूर्णानन्दजी वर्मा) ... ७९५
११२–विशेषाङ्कमें 'अग्निपुराण'के साथ-साथ 'गर्ग-संहिता'के प्रकाशनकी योजना ... १३५६
११३–(श्री) विष्णु या पुरुषोत्तम-तत्त्व (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) १२०८, १३१२
११४–वेदमें व्याहृति-विचार (डॉ० श्रीसिद्धनाथजी शुक्ल) ... ११४१, १२१४
११५–शाप और वरदानसे आयुनाश और आयु-वृद्धि (डॉ० श्रीसम्पूर्णानन्दजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ७४७
११६–शारीरिक साधन (डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी') १२७५
११७–शिवभक्त कवि श्रीदेवीसहायजी (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) १२८१
११८–श्राद्ध-तर्पण, ब्राह्मण-भोजन, अन्न-वस्त्रदानके लिये परलोकगत आत्माकी माँग और उसे पूरा करनेपर उसकी तृप्ति तथा संतुष्टि (भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ) ... १११९
११९–संतति या परिवार-नियोजनपर महात्मा गांधीजीके विचार ११०७
१२०–संस्कृत-साहित्यमें परलोक तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्त (श्रीरामप्यारेजी मिश्र, एम्० ए०, (संस्कृत तथा हिंदी), व्या० शास्त्राचार्य, साहित्यरत्न) ७३७
१२१–सच्चा साम्राज्य (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) १०२५
१२२–'सतपंच चौपाई मनोहर' (डॉ० श्री-हरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०) ९८५
१२३–सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन ... ८६१, ८८८, ९४४, १००७, ११३०, १३०२
१२४–सभ्यतासे जगमगाते देश अमेरिकाके प्रधान नगर न्यूयार्ककी स्थिति ('नार्दर्न इण्डिया पत्रिका', फरवरी ११ से) ... ७९४
१२५–सर्वरोग-शोक-हर महामन्त्र (प्रयोगकर्ता और प्रेषक—स्वामी श्रीसत्यानन्दजी 'हरि') ८९७
१२६–साम्प्रदायिकता क्या है ? (श्रीओमप्रकाशजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, सा० रत्न) ९१२

१२७–सावधान ! यह भ्रष्टाचारका अजगर राष्ट्रको निगल रहा है (श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार) ११५८
१२८–सूक्ष्म शरीर—स्वरूप एवं प्रमाण (रिसर्च स्कॉलर श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए० (हिंदी-संस्कृत), बी० एड्०, व्याकरणाचार्य) ७९२
१२९–सूरदासकी राधा (श्रीगौरीशंकरजी श्रीवास्तव, एम्० ए०, साहित्यरत्न, शिक्षाशास्त्री) ... ९२६
१३०–(श्री) सूरदासजीका होली-वर्णन (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ... ७८३
१३१–सेवाका स्वरूप ८८३
१३२–स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाका लोकोत्तर व्यक्तित्व (पं० श्रीदेवधरजी शर्मा) १०४३
१३३–हम ही अपने मित्र हैं और हम ही अपने शत्रु हैं (श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०) ८४५
१३४–हिंदू राष्ट्रवाद और कुछ भ्रान्तियाँ (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ... ८०३

पद्य-सूची

१–कर नवनीत लियें नटनागर ... ९९७
२–क्या न करो, क्या करो १०३७
३–(श्री) कृष्णजन्माष्टमी-महोत्सव ... ११६८
४–गो-प्रेमी गोपाल १२९७
५–जय मृत्युंजय ८७७
६–जीवनका सार ८००
७–देवर्षि नारद १११७
८–द्रौपदीकी यज्ञसे उत्पत्ति १२३७
९–नन्दलालके विचित्र चरित्र ... ९३७
१०–नित्य भगवान्‌को भजो और उन्हींके मनभाये सत्कर्म करो ९६३
११–निर्भरतासे प्रभु-प्राप्ति १३३३
१२–निवेदन (प्रो० श्रीरामस्वरूपजी खरे, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ११०२
१३–परम शान्तिके साधन ८७१
१४–परमानन्द ९३९
१५–पर्वतोंपर पर्यटन करनेवाले वनवासी सीता-राम-लक्ष्मण ८१७
१६–पुकारा करेंगे (श्रीत्रेतानाथजी तिवारी) ८९६
१७–पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह ७५७
१८–प्रभुको पूरा अधिकार दे दो ... ९४८
१९–प्रार्थना ११५७
२०–प्रेमरूप पवित्र फल १०७७
२१–बस, केवल तुम्हीं हो १०१५
२२–बालक श्रीव्रजचन्द्रकी बालक्रीड़ा ... ९०२
२३–भलाई, बुराई और दवाई (पं० श्रीसीतारामजी शुक्ल, भूतपूर्व एम्० एल्० ए०) ७४९
२४–महर्षि वसिष्ठ १०५७
२५–मांसाहारीको घोर नरककी यातना ... ७७४
२६–मानवके वर्तमान कर्म, उनका बुरा फल और मानवका कर्तव्य १२७३
२७–मानव-जीवनका लक्ष्य १२१६
२८–मुरली तथा मोहनी छबिका चमत्कार ... ६९७
२९–मूल्यवान् जीवन व्यर्थ जा रहा है ... ९८७
३०–मैं तो तेरा (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा) ... ८५०
३१–(श्री) राधाके प्रति (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ... १२१२
३२–(श्री) राधामाधव-जयजयकार ... १२०७
३३–शरणागतवत्सलता १०९२
३४–शिव-शक्ति (श्रीकुमुद विद्यालंकार) ... १२६६
३५–शुद्ध आहारकी महिमा १०४६
३६–श्रेष्ठ योगी ९१२
३७–संसार-सत्य (श्रीजगन्नारायणदेवजी शर्मा, 'कविपुष्कर', शास्त्री) ११९६

३८—सद्गुरुकी सेवासे परम कल्याण ... ८४४
३९—सब तुम्हीं हो १३१५
४०—सबमें भगवान् देखनेवाला हिंदू-धर्म ... ८०७
४१—सब रूपोंमें प्रियतमको पहचान लें ... ११२३
४२—सर्वत्र तुम ही १२५५

संकलित पद्य-सूची

१—कामनाकी आग विषयभोगसे नहीं बुझती (श्रीतुलसीदासजी) ७०२
२—श्रीकृष्णनाम (श्रीलक्ष्मीधर) १२११
३—मायाविवश नारदका भगवान्‌को शाप (रामचरितमानस) ११७७

कहानी-सूची

१—अजीब दुःख! विचित्र इलाज (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... १०८५
२—उपज [सत्य घटनापर आधारित] (श्रीकृष्ण-गोपालजी माथुर) ८०१
३—जब ऋषि गहने बनवाने निकले (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७७७
४—जैसा अभिनय, वैसा फल (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... १३०७
५—दाईका तालाव (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ८३०
६—दुखियोंके लिये आत्मदान (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ९५६
७—धनका बँटवारा (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ८९८
८—सफल यात्रा (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ... ११६०
९—सेवा (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ... १३४०
१०—हुंडी (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ... ९८२
११—हृदयमें भगवान् जगे (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेशरी) ११५१

संकलित गद्य-सूची

१—अमृत-कण (संग्रहकर्ता और प्रेषक—श्री-शालिगरामजी) ९६६
२—अहंकार और ममताका नाश ही मुक्ति है (महर्षि रमण) ७६६
३—कोई कुछ भी कहें (संकलनकर्ता—'श्रीमाधव') १००२
४—गर्भमें जीवकी चिन्ता और प्रतिज्ञा ... ६९८
५—भारतवर्षमें जातिप्रथासे लाभ ९९१
६—सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है १३११
७—संत कौन है ? ७५६

चित्र-सूची

[रंगीन]

१—कर नवनीत लिये नटनागर ९९७
२—गो-प्रेमी गोपाल १२९७
३—जय मृत्युंजय ८७७
४—देवर्षि नारद १११७
५—द्रौपदीकी उत्पत्ति १२३७
६—नारदका कोप ११७७
७—परम मधुर श्रीराधेश्याम ६९७
८—पर्वतोंपर पर्यटन करनेवाले वनवासी सीता-राम-लक्ष्मण ८१७
९—पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह ७५७
१०—बालक श्रीव्रजचन्द्रकी बालक्रीड़ा ... ९३७
११—महर्षि वसिष्ठ १०५७

[रेखाचित्र]

१—अर्जुनको उपदेश ... १० वें अङ्कका मुखपृष्ठ
२—कन्हैयाका मैयाको संकेत ... ८ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
३—त्रिभङ्ग मुरलीधर ... ५ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
४—दिव्य चरणचिह्नोंकी उपासना ९ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
५—ध्यानस्थ शंकर ... ७ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
६—मधुर युगल ... २ रे अङ्कका मुखपृष्ठ
७—महाताण्डव ... ३ रे अङ्कका मुखपृष्ठ
८—मीराँका प्रेम ... ४ थे अङ्कका मुखपृष्ठ
९—मुरली-लीला ... ११ वें अङ्कका मुखपृष्ठ
१०—सिंहासनासीन गणपति ... ६ ठे अङ्कका मुखपृष्ठ
११—सूरके श्याम १२ वें अङ्कका मुखपृष्ठ

सन् १९६९ में छपी हुई सोलह नवीन पुस्तकें

		मूल्य
१–श्रीरामचरितमानसका, बृहदाकार मूल संस्करण–यह संस्करण हमारे सटीक १८.०० वाले संस्करणका ही मूलमात्र निकाला गया है, वही आकार है		११.००
२–विरह-पदावली–सूरदासजीके पदोंका सानुवाद संग्रह । पृष्ठ-संख्या २६०	....	१.२५
३–मधुर (भाग २)–दिव्य श्रीराधा-माधव-प्रेमकी मधुर ३२ झाँकियाँ, पृष्ठ-संख्या १५८	....	.६०
४–नकली और असली प्रेम–(पढ़ो, समझो और करो, भाग ८) आदर्श चरित्र-कथाओंका आठवाँ संग्रह, पृष्ठ-संख्या १३६	....	.५०
५–भगवान्के सामने सच्चा, सो सच्चा–(पढ़ो, समझो और करो, भाग ९) सत्प्रेरणा देनेवाली घटनाओंका नवाँ संग्रह, पृष्ठ-संख्या १३२		.५०
६–काँटेके बदले फूल–(पढ़ो, समझो और करो, भाग १०) मङ्गलमयी प्रेरणादायक सत्य घटनाओंका दसवाँ संग्रह, पृष्ठ-संख्या १३२		.५०
७–आनन्दके आँसू–(पढ़ो, समझो और करो, भाग ११) चरित्र-निर्माण और जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचानेवाली सत्य घटनाओंका ग्यारहवाँ संग्रह, पृष्ठ-संख्या १३४	....	.५०
८–ज्ञान-मणिमाला–लेखक—ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास, पृष्ठ-संख्या ६८	....	.३०
९–श्रमण-नारद–लोकसेवाव्रतकी एक आदर्श कथा	....	.१५
१०–कल्याणकारी आचरण–जीवनमें पालन करनेयोग्य बातोंका अत्यधिक लोकप्रिय संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३२		.१५
११–प्रार्थना-पीयूष–प्रार्थनाके ऊपर सारगर्भित लेखों और १६ सानुवाद पदोंसे युक्त २६ पृष्ठकी पुस्तक		.१५
१२–मेरे पाँच महाभय–लेखक—बाबू श्रीप्रकाशजी, भूतपूर्व राज्यपाल बम्बई; देशकी वर्तमान स्थितिपर गम्भीर विचार, पृष्ठ-संख्या २४	....	.१५
१३–श्रीरुद्रगीत–श्रीमद्भागवतके चतुर्थ-स्कन्धके 'श्रीरुद्रगीत' का पुस्तक-संस्करण, पृष्ठ-संख्या ३२		.०६

English Books

14-Śrīmad Vālmīki-Rāmāyaṇa-with Sanskrit text and English translation, Part I (Bāla-Kāṇḍa and Ayodhyā-Kāṇḍa)	12.00
15-Śrīmad Vālmīki-Rāmāyaṇa-with Sanskrit text and English translation, Part II (Araṇya-Kāṇḍa, Kiṣkindhā-Kāṇḍa and Sundara-Kāṇḍa)	12.00
16-Śrīmad Bhagavadgītā-with Sanskrit text and English translation with valuable explanation	8.00

उपर्युक्त दामोंपर डाकखर्च अलग ।

७३ पुस्तकोंके दामोंमें कमी

पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी लिखी हुई ७३ पुस्तकोंका मूल्य घटाकर पुराना मूल्य कर दिया गया है ।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

क्षमा-प्रार्थना

इधर कई महीनोंसे मासिक 'कल्याण' ग्राहकोंकी सेवामें बहुत देरसे—महीनेके अन्त या दूसरे महीनेके प्रथम सप्ताहमें भेजा जा सका है। प्रधान सम्पादककी अस्वस्थता आदि कारणोंसे लेखसामग्री प्रेसमें बहुत देरसे पहुँचती और मुद्रणमें विलम्ब हो जाता। यही देरीका प्रधान कारण था। इससे 'कल्याण' पढ़नेके लिये समुत्सुक रहनेवाले 'कल्याण'प्रेमी पाठकोंको बड़ी असुविधा तथा पीड़ा हुई है, इसे हम जानते हैं और इसके लिये हाथ जोड़कर उनसे क्षमा चाहते हैं। अब अगला विशेषाङ्क तो इस बार बहुत देरसे ही निकल पायेगा; परंतु उसके आगेके मासिक अङ्क ग्राहकोंकी सेवामें महीनेके प्रथम सप्ताहमें ही भेज दिये जायँ, इसके लिये पूर्ण प्रयत्न किया जायगा।

'कल्याण'के प्राप्य विशेषाङ्क

'कल्याण'के अबतकके विशेषाङ्कोंमेंसे निम्नलिखित अङ्क प्राप्य हैं।

(१) ३७ वें वर्षका—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त-पुराणाङ्क—पृष्ठ-संख्या ६८२, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य ७.५०

(२) ३९ वें वर्षका—भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र २३, दोरंगा १, सादा ८, रेखाचित्र १२, मूल्य ७.५०, सजिल्द ८.७५

(३) ४० वें वर्षका—धर्माङ्क—पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादा ४, रेखाचित्र ८१, मूल्य ७.५०, सजिल्द ८.७५

(४) ४१ वें वर्षका—श्रीरामवचनामृताङ्क—पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, रेखाचित्र ६४, मूल्य ८.५०, सजिल्द १०.००

(५) ४२ वें वर्षका—उपासनाङ्क—पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र १६, दोरंगा १, रेखाचित्र ३४, यन्त्र तथा मुद्राएँ ८, मूल्य ९.००, सजिल्द १०.५०

(६) ४३ वें वर्षका—परलोक और पुनर्जन्माङ्क—पृष्ठ-संख्या ६९६, बहुरंगे चित्र १९, दोरंगा २, सादे चित्र ५९, (११ मासिक अङ्कोंसहित) मूल्य ९.००, सजिल्द १०.५०

डाक-व्यय सबमें हमारा होगा।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस, (गोरखपुर)

सम्मान्य प्रेमी ग्राहकों, पाठकों तथा लेखक महानुभावोंसे प्रार्थना

(१) 'कल्याण'का ४३वाँ वर्ष इस बारहवें अङ्कमें समाप्त हो रहा है। अब जनवरीका अङ्क 'अग्निपुराण और गर्गसंहिता-अङ्क' होगा, जिसकी सूचना इसी अङ्कमें अन्यत्र छपी है। इस विशेषाङ्कके रूपमें यह ४४वें वर्षका प्रथम अङ्क होगा। इसमें प्रकाशित 'अग्निपुराण'में विविध अवतारोंकी कथाओंके साथ-साथ विभिन्न देवताओंकी विविध विधियुक्त वैदिक उपासना तथा प्राचीन विद्या-कलाओंका वर्णन रहेगा; साथ ही 'गर्गसंहिता' में भगवान् श्रीराधामाधव, गोलोक-धाम, दिव्य सखागण तथा दिव्य स्थलोंके अवतार; भगवान्की प्राकट्य-लीला; उनकी वृन्दावन, मथुरा और द्वारिका-लीलाओंका बड़ा ही सरस वर्णन होगा। कथाके अनुरूप चित्र भी रहेंगे। इस प्रकार यह अङ्क सबके लिये ज्ञानवर्धक, भक्ति-प्रेमदायक तथा संग्रहणीय होगा।

(२) खर्च उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। कागज, डाकमहसूल, वेतन—सभीमें वृद्धि हुई है। खर्च और भी बढ़नेकी सम्भावना है तथापि मूल्य अभी ९.०० (नौ) रुपये ही रक्खा गया है। यह मूल्य एक विशेषाङ्कके लिये भी पूरा नहीं है, पर यदि अनिवार्य बाधा नहीं आयी तो ११ महीने-तक साधारण मासिक अङ्क भी दिये ही जायँगे। मनीआर्डर-फार्म भेजे जा चुके हैं। रुपये शीघ्र भेजनेकी कृपा करें। भेजते समय मनीआर्डर-कूपनमें अपना नाम, पूरा पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश—साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक न रहना हो तो कृपया कार्ड लिख दें। रुपये भेजनेपर भी कदाचित् पहले वी० पी० द्वारा विशेषाङ्क पहुँच जाय तो वी० पी० लौटावें नहीं, नया ग्राहक कृपया बना दें। 'कल्याण'के जितने ग्राहक अधिक होंगे, उतना ही भगवद्-भावोंका प्रचार अधिक होगा, जो विश्व-कल्याणके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अतएव सभी कल्याणप्रेमियोंसे साग्रह निवेदन है कि वे इस बार विशेष चेष्टा करके 'कल्याण'के अधिक-से-अधिक नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा तुरंत भिजवानेकी कृपा करें।

(४) किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण'का प्रकाशन बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क या उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लें।

(५) यह बारहवाँ अङ्क कुछ देरसे जा रहा है और इस विशेषाङ्कके सम्पादन, मुद्रण तथा चित्रनिर्माण एवं मुद्रणमें पर्याप्त विलम्ब हो रहा है, अतः बहुत चेष्टा करनेपर भी जनवरीके अन्त या फरवरीके प्रथम सप्ताहसे पूर्व अङ्कका निकलना सम्भव नहीं मालूम होता। ग्राहक महानुभाव इस विलम्बके लिये कृपया धैर्य रक्खें, पत्र-व्यवहार न करें और हमारी विवशताके लिये अपने शीलकी ओर देखकर क्षमा करें। इस अङ्कमें लेख शायद ही जा सकेंगे। लेखक महानुभाव भी क्षमा करें। यह सबसे विनीत प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस, गोरखपुर